पुस्तक :

अतीत के उज्ज्वल चरित्र

लेखक :

देवेन्द्र मुनि शास्त्री, साहित्यरत्न

अर्थ सहयोगी

स्वर्गस्थ उषा कुमारी भुरट की स्मृति में
सेठ खुशालचन्दजी पुसारामजी भुरट
घोडनदी जि पूणे (महाराष्ट्र)

प्रकाशक :

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
पदराडा जि. उदयपुर (राजस्थान)

प्रथम मुद्रण :

विजया दशमी वि. सं, २०२६
अक्टूबर १९७२

मुद्रण व्यवस्था :

श्रीचन्द सुराना 'सरस'
संजय साहित्य संगम
दामबिल्डिंग नं. ५,
बिल्लोचपुरा, आगरा-२

मुद्रण :

श्री प्रिंटर्स
राजामण्डी, आगरा-२

मूल्य : दो रुपया मात्र

जो इतिहास और संस्कृति के गभीर ज्ञाता है।
जो विज्ञान और कला मे निष्णात हैं,
जो धर्म और दर्शन के परम अध्येता है,
उन्ही परम श्रद्धेय सद्गुरुवर्य
राजस्थान केसरी **श्री पुष्कर मुनिजी म.** के
कर कमलो में

—देवेन्द्र मुनि

लेखक की कलम से

ऐतिहासिक, दार्शनिक, सास्कृतिक, आध्यात्मिक ग्रन्थो को पढने की मेरी स्वाभाविक अभिरुचि रही है। उन ग्रन्थो को पढते समय जो बात मुझे पसन्द आती है वह मैं डायरी मे नोट भी कर लेता हू।

अतीत के उज्ज्वलचरित्र मे शृखलाबद्ध कोई इतिहास नही है किन्तु इतिहास के उन जगमगाते नक्षत्रो का कुछ परिचय अवश्य है जिन्होने मुझे प्रभावित किया।

इस विराट् विश्व मे कोई किसी को स्मरण नही करता है। काल के महासिन्धु मे मानव के जीवन बिन्दु का मूल्य भी क्या है ? प्रतिदिन ससार मे करोडो मानव जन्मते हैं और मरते हैं, पर कौन किसे स्मरण रखता है, जिन माता-पिता की सुखद गोद मे मानव ने किलकारियां भरी, उन्हे भी वह विस्मृत हो जाता है। पति-पत्नी के सुख-दु'ख की करुण कहानी भी कहाँ याद रहती है। जिन चुन्नु-मुन्नो को प्यार से, दुलार से पाला-पोपा उनके दारुण वियोग की कचोट भी लम्बे समय तक स्थिर नही रहती, पर कभी-कभी ऐसे विशिष्ट व्यक्ति आते हैं जो मानव के दिल और दिमाग पर गहनता व घनता के साथ अकित हो जाते है जो भुलाने पर भी भूलाये नहीं जा सकते हैं,

वे उभर-उभर कर उसकी चेतना पर छा जाते हैं। वह है उन विशिष्ट व्यक्तियो के जीवन का अनुभाव, प्रभाव और जादू।

प्रस्तुत पुस्तक मे ऐसी ही कुछ घटनाएं है जो इतिहास सम्मत है, यदि पाठको को इससे कुछ प्रेरणा-प्राप्त हो सकी तो मैं अपना श्रम सफल समझूंगा।

परम श्रद्धेय राजस्थान केसरी प्रसिद्धवक्ता पूज्य गुरुवर्य पुष्कर मुनिजी म० के हार्दिक आशीर्वाद के कारण ही मे साहित्यिक क्षेत्र मे प्रगति कर रहा हूँ। उनके प्रति किन शब्दो मे आभार प्रदर्शित करू, यह मुझे नही सूझ रहा है, जो कुछ भी इसमे अच्छाई है वह उन्ही के दिशा-दर्शन और असीम कृपा का प्रतिफल है।

परम स्नेही 'सरस' जी को भी भूल नही सकता जिन्होने पुस्तक को सर्वाधिक सुन्दर बनाने का प्रयास किया है।

रक्षाबन्धन

२६-८-७२

जैन स्थानक सिहपोल —देवेन्द्र मुनि

जोधपुर (राजस्थान)

प्रकाशकीय

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय के इस अनुपम व अमूल्य रत्न को पाठको के कर कमलो मे अर्पित करते हुए हमारा अन्तर्मानस हर्षोल्लास से भर रहा है, शरीर का रोम-रोम पुलकित हो रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक मे क्रमवद्ध इतिहास नही है, किन्तु उन जैन सम्कृति के ज्योतिर्धर आचार्यो के जीवन की वे महत्वपूर्ण घटनाएं हैं, उन जैन श्रावको के विशिष्ट प्रसग है और उन व्यक्तियो के चमचमाते हुए चरित्र है जिन्होने जन-जीवन को नव-निर्माण की प्रेरणा दी है। जिनका जीवन अगरवत्ती की तरह सुगन्धित और मोमवत्ती की तरह प्रकाशित रहा है।

देवेन्द्र मुनिजी ने स्थानकवासी जैन समाज के चारित्र-निष्ठ आचार्यो के, मुनियो के तथा प्रतिभा मूर्ति साध्वियो के प्रसंग भी लिखे है, पर पुस्तक कही विशेष वडी न हो जाये इसलिए वे सारे प्रसग इसमे नही दिये है। वे पावन-प्रसग अन्य पुस्तक मे दिये जायेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन का सम्पूर्ण अर्थ सहयोग हमारे उदारमना सेठ साहव खुशालचन्दजी पुसारामजी भुरट, घोडनदी

निवासी ने वहन किया है। उन्होंने अपनी पोती स्वर्गीय कुसु
उषा भुरट की स्मृति में यह पुस्तक प्रकाशित करने के लि
हमें आग्रह किया—हम उनकी साहित्य-प्रेम व गुरु भक्ति का ह
से अभिनन्दन करते हैं।

—शान्तिलाल जैन
मंत्री—तारक गुरु जैन ग्रन्थाल
पदराड़ा, उदयपुर

स्व० कुमारी उषा भुरट, घोड़नदी

बहिन कुमारी उषा भुरट : एक परिचय

जिन्दगी केवल न जीने का बहाना,

जिन्दगी केवल न सांसो का खजाना।

जिन्दगी सिन्दूर है पूरब दिशा का,

जिन्दगी का काम है सूरज उगाना।

विश्व मे उसी का जीवन महान् है जो सूर्य की तरह प्रकाशित है, चन्द्र की तरह सौम्य है, फूल की तरह सुगन्धित है, सागर की तरह विराट् है, हिमालय की तरह उन्नत है। कवि उसी के जीवन की गौरव गाथा गाता है, लेखक उसी के जीवन को उट्टङ्कित करता है और कलाकार उसी के जीवन की छवि उतारता है। वहिन कुमारी उषा भुरट का जीवन इसी प्रकार का तेजस्वी जीवन था।

महाराष्ट्र की धर्मपुरी घोडनदी मे उषा वहिन का दिनाङ्क १२-७-५८ को जन्म हुआ। श्रीमान खुशालचन्दजी पुसारामजी साहब भुरट आपके दादाजी हैं और धर्मानुरागिणी अखण्ड सौभाग्यवती श्री सिरावाई आपकी दादीजी है। वहिन उषा के पिता श्री का नाम मदनलालजी है और माताजी का

नाम आनन्दीबाई है। श्रीमान् सम्पतलालजी आपके पिताजी के बड़े भाई हैं।

परम श्रद्धेय राजस्थानकेसरी प्रसिद्धवक्ता पूज्य गुरुदेव श्री पुष्कर मुनिजी म० का अपने शिष्य परिवार सहित सन् १९६८ का वर्षावास घोड़नदी मे हुआ, उस समय परम श्रद्धेय गुरुदेव श्री के ओजस्वी तेजस्वी प्रवचनो को सुनकर भुरट परिवार के प्रत्येक सदस्य मे धार्मिक भावना जागृत हुई। वहिन उपा के जीवन मे भी नया मोड आया, उसके जीवन मे भी अत्यधिक धार्मिक भावनाएँ अँगडाइयाँ लेने लगी, आठवी कक्षा का अध्ययन चल रहा था, धार्मिक अध्ययन भी उसने प्रारम्भ किया था, सद्गुरुदेव के प्रति अटूट श्रद्धा थी। सभी उसके प्रति अनेक प्रकार के उज्जवल भविष्य के विचार सजोये हुए थे, पर क्रूर काल की गति महान् है जिसके सामने किसी का जोर नही चलता। पन्द्रह वर्ष की लघुवय मे कुछ दिनो की बीमारी के पश्चात् बहिन उषा का दि० ५-८-७१ को देहावसान हो गया। उसकी पुण्यस्मृति मे उनके दादाजी ने गुरुदेव से आग्रह किया कि ऐसे महान् पुरुषो के परिचय की पुस्तक दी जाय जो बालको के लिए भी उपयोगी हो। उनके आग्रह से यह पुस्तक प्रकाशित की जा रही है। आशा है यह वृद्ध व युवको को तो प्रेरणादायी होगी ही, किन्तु खास कर उभरती उम्र के बालक बालिकाओ के जीवन निर्माण मे विशेष सहयोग देगी।

—शान्तिलाल जैन

अनुक्रमणिका

o—o

१ || भगवान् महावीर

आज से पच्चीससौ वर्ष पूर्व भगवान् महावीर का जन्म चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन बिहार प्रान्त के क्षत्रिय कुड नगर मे राजा सिद्धार्थ के यहां त्रिशलादेवी के गर्भ से हुआ। बालक महावीर का नाम माता पिता ने वर्द्धमान रक्खा। किन्तु आगे चलकर जब वे अतीव साहसी, दृढ निश्चयी और विघ्न-बाधाओ पर विजय प्राप्त करने वाले विशिष्ट पुरुप के रूप में ससार के सामने आये तब से महावीर के नाम से विश्व मे प्रसिद्ध हुए।

बालक महावीर बचपन से ही होनहार थे। उनकी मेधा शक्ति तीव्र थी। उनको एकान्त प्रिय था, वे घण्टो तक आध्यात्मिक चिन्तन किया करते थे। राजा सिद्धार्थ उनकी इस चिन्तनशील प्रकृति से डरते थे कि कही यह विचार करते-करते श्रमण न वन जाय इसलिए उस युग की अनिन्द्य सुन्दरी समरवीर राजा की सुपुत्री यशोदा के

साथ शीघ्र ही विवाह कर दिया। यद्यपि महावीर विवाह बंधन मे बंधना नही चाहते थे किन्तु माता पिता की आज्ञा को वे टाल न सके। उनके एक पुत्री भी हुई, जिसका नाम प्रियदर्शना रखा गया।

जब उनकी अवस्था अट्ठाईस वर्ष की हुई तब माता-पिता का देहान्त हो गया। राजसिंहासन के लिए महावीर से समस्त प्रजा और परिवार वालो ने आग्रह किया किन्तु उन्होने स्पष्ट इन्कार कर दिया। अन्त मे महावीर के बडे भैया नन्दीवर्द्धन को राजसिंहासन पर बिठा दिया गया। महावीर ने परिवार वालो के सामने श्रमण की भावना प्रकट की, किन्तु नन्दीवर्द्धन के आग्रह पर दो वर्ष और गृहस्थाश्रम मे रहे, इस प्रकार कुल तीस वर्ष का जीवन उन्होने गृहस्थ दशा मे विताया। अगहन कृष्णा दशमी के दिन राजकुमार महावीर अपने अन्दर सोये हुए परमात्म तत्त्व को जागृत करने के लिए, राज्य-वैभव और भोग विलास को तिलांञ्जलि देकर वे सच्चे साधु बन गये।

महावीर का साधना काल बडा ही विलक्षण है। उन्होने दीक्षा लेते ही धर्म प्रचार का कार्य नही किया। जब तक उन्हे केवल्य प्राप्त नही हुआ वहां तक वे एकान्त

शान्त स्थान में रह कर वीतराग भाव की साधना करते रहे। उस समय उन्होने शरीर पर किंचित्मात्र भी मोह नही किया। क्या गर्मी, क्या सर्दी और क्या वर्षा सभी समय उनका साधना दीप जलता रहा। साढे बारह वर्षों में उन्हें भयंकर कष्टो का सामना करना पडा। ग्रामीण लोग बडी निर्दयता के साथ पेश आते थे। ताडन, तर्जन और उत्पीडन प्रतिदिन की बात थी। लाढ देश में आपको कुत्तो से भी नुचवा डाला था। किन्तु आप सदा शान्त और मौन रहे। विरोधी से विरोधी व्यक्ति के प्रति भी आपके मन मे प्रेम का झरना वहता था। उन्होने नागराज चण्डकौशिक का भी उद्धार किया वह प्रसग इस प्रकार है—

भगवान् प्रथम वर्षावास समाप्त कर श्वेताम्वी नगरी की ओर जा रहे थे। चारो ओर प्राकृतिक सौन्दर्य-सुषमा विखरी हुई थी। भगवान के तपस्तेज से देदीप्यमान देह की निर्मल आभा से वन प्रदेश और भी अधिक सुन्दर हो रहा था। भगवान् महावीर आत्मा की मस्ती में झूमते हुए आगे वढ रहे थे।

मार्ग मे कुछ ग्वाल वाल मिले, उन्होने भगवान् से नम्र निवेदन किया—आप इधर न जाइए! इधर कुछ दूर

पर चण्डकौशिक सर्प रहता है। वह दृष्टि विष है, केवल देखने मात्र से ही लम्बी दूर के वायु मण्डल को विषाक्त बना देता है। आदमी मर जाता है।

भगवान् ने कुछ भी उत्तर नही दिया, वे आगे बढते गये निर्भीकतापूर्वक।

ग्वाल वालो ने दौड कर आगे रास्ता रोका। अय! भिक्षु तुम्हारे पर दया लाकर ही हम तुम्हारे से प्रार्थना कर रहे है, अपने अनमोल जीवन को क्यो नष्ट कर रहे हो, अधिक हठ करना उचित नही है। आपको इधर जाना है तो इस दूसरे मार्ग से जा सकते है, सर्प के भय से लोग इसी मार्ग से जाते है।

भगवान ने उनकी बात की ओर ध्यान ही नही दिया, वे रोकते रहे, भगवान् आगे बढ गये। चण्डकौशिक के निवास स्थान पर पहुँचकर भगवान् ध्यान मुद्रा मे खडे हो गए। चण्डकौशिक फुफकार मारता हुआ बांबी से बाहर निकला, किन्तु उसकी दृष्टि का जरा भी असर नही हुआ। अपना शस्त्र खाली जाता हुआ देखकर वह क्षुब्ध हो उठा, उसने दुगुने वेग से फुफकार मारी, तथापि कुछ नही। अब तो उसे अपनी असमर्थता पर खीज आ गई। उसने पूर्ण आवेश में आकर भगवान् के चरणो मे दंश मारा। श्वेत

रुधिर की धारा बह निकली। कौशिक स्तब्ध हो गया, यह क्या ? वह टकटकी लगाकर देखता रहा।

भगवान् ने कहा–दूसरो को सताने से क्या लाभ है। मुझे खेद है कि तुमने हजारो प्राणियो को दुःख दिया है, किन्तु तुझे पता नही कि इस दुष्कृत्य का क्या परिणाम होगा। पूर्व जन्म के पापो से तुझे सर्प बनना पडा। अब जो तू पाप कर रहा है उससे तुझे क्या फल मिलेगा, जरा शान्ति से सोचो और समझो। अभी भी कुछ नही बिगडा है, अपनी दुष्ट प्रकृति को छोडो। यदि तुम किसी को सुख नही पहुँचा सकते हो तो किसी को दुःख तो न दो।

भगवान् के प्रेम भरे वचनो से नागराज विचार सागर में डूब गया। उसे पूर्व जन्म का भान हो गया। पूर्व किये गये दुष्कृत्य चल-चित्र की तरह आँखो के सामने आने लगे। वह घबरा गया। उसने अपना मस्तक प्रभु के चरणो में टेककर कहा–

भगवन् ! मेरे अपराध को क्षमा करे। मैं पामर प्राणी हूँ। मैंने आपको पहचाना नही प्रभु ! अब मेरा किस प्रकार उद्धार होगा। मैं आपकी शरण मे आया हूँ, मेरी रक्षा करो।

भगवान्—नागराज ! आज से किसी को तन, मन और

वचन से पीडा न पहुँचाओ।"

नागराज ने भगवान् के उपदेश को धारण किया। भगवान् वहाँ से चल दिये। विषधर सर्प अमृतधर बन गया था। जो लोग सर्प को मारना चाहते थे, वे ही लोग सर्प की दूध, घी से पूजा कर प्रसन्न हो रहे थे।

भगवान महावीर के साधना काल की कितनी ही कहानियाँ जैन-साहित्य मे उल्लिखित है।

भगवान् महावीर उग्र साधना करते हुए 'जभिय' गॉव के पास बहने वाली ऋजु बालिका नदी के तट पर पहुँचे। वहाँ साल का एक सघन वृक्ष था। उसके नीचे ध्यानस्थ हुए, आत्म-मंथन चरम सीमा पर पहुँचा। वैशाख शुक्ला दसमी के दिन घनघाती कर्मो को नष्ट कर केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त किया। इसे ही जैन परिभाषा में 'अरिहंत' और 'जिन' कहते है।

कैवल्य प्राप्त होते ही उन्होने प्रवचन देना प्रारम्भ किया। साधु साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप तीर्थ की संस्थापना कर वे तीर्थङ्कर बने। सत्य का वास्तविक स्वरूप उन्होने जनता के सामने रखा। हिंसामय यज्ञो का उन्होंने खुलकर विरोध किया। अहिसक यज्ञ की उन्होने स्थापना की। उन्होने कहा—यदि तुम्हे यज्ञ करना है तो

पशुओं की वलि से नही, किन्तु विपय-विकारो की बलि से करो। उसके लिए आत्मा का अग्नि-कुण्ड बनाओ। उसमें मन, वचन और काया के द्वारा शुभ प्रवृति का घी उँडेलो। तप अग्नि से दुष्कर्म का ईंधन जलाकर शान्ति रूप श्रेष्ठ होम करो।

जातिवाद का भी उन्होंने खण्डन किया, नारी जाति के उत्कर्प पर उन्होने वल दिया। अहिसा, अपरिग्रह अनेकान्त का खुलकर प्रचार किया। उनके संघ मे इन्द्र-भूति गौतम आदि चौदह हजार साधु और चन्दनबाला आदि छत्तीस हजार साध्विया हुई। एक लाख, उनसठ हजार श्रावक वने और तीन लाख, अठारह हजार श्राविकाएँ बनी।

भगवान् महावीर का तीस वर्प का कैवल्य जीवन वडा ही महत्त्वपूर्ण और विश्व कल्याणकारी है।

पावा नरेश हस्तिपाल के आग्रह पर भगवान् ने अन्तिम चातुर्मास पावा में किया। कार्तिक कृष्णा अमावस्या के दिन, बहत्तर वर्ष का आयु पूर्ण कर भगवान् मोक्ष पधारे।

२ ‖ आचार्य भद्रबाहु

आचार्य भद्रबाहु जैनसस्कृति के एक ज्योतिर्धर आचार्य थे। उनका जन्म प्रतिष्ठानपुर नगर में हुआ था। वे दो भाई थे। छोटे भ्राता का नाम वराहमिहिर था। भद्रबाहु ने आर्ययशोभद्र के पास चवालिस वर्ष की अवस्था मे अपने लघु भ्राता के साथ जैन धर्म की दीक्षा ग्रहण की। अठारह वर्ष तक वे साधारण मुनि अवस्था मे रहे, बाद में योग्य समझकर सघ ने उनको आचार्य पद प्रदान किया। वराहमिहिर स्वयं आचार्य बनना चाहता था, पर भद्रबाहु के सामने उसकी योग्यता कुछ भी नही थी अतः आचार्य नही बन सका। ईर्ष्या से उसने साधु वेष का भी परित्याग कर दिया। ज्योतिष शास्त्र का वह ज्ञाता था इसलिए वराहमिहिर संहिता का उसने निर्माण किया।

वह एक दिन एक राजा के पास पहुँचा, अपने को ज्योतिषशास्त्र का निष्णात बताकर राजपुरोहित पद को

प्राप्त किया। उसके मन में जैन सघ के प्रति प्रतिशोध लेने की भावना पनप रही थी, वह समय-समय पर राजा के सामने जैन संघ की निन्दा और आलोचना किया करता था।

एक वार आचार्य भद्रबाहु स्वामी अपने शिष्यो के साथ वहा पर पधारे! उस समय राजा के पुत्र हुआ। वराहमिहिर ने जन्म पत्रिका बनाई और कहा–इस पुत्र की उम्र सौ वर्ष की है। अन्य ज्योतिपियो ने भी उसका समर्थन किया। नगर में अत्यन्त उत्साह के साथ पुत्रोत्सव मनाया गया। सभी लोग राजा को वधाई देने के लिए पहुचे।

वराहमिहिर ने राजा से कहा—देखिए! नगर के सभी लोग आये, पर जैन सघ के आचार्य भद्रबाहु नही आये, मालूम होता है कि आपके पुत्र होने से उनके मन मे हर्ष ही नही है। उन्होने न आकर अपराध किया है, उन्हे इसका अवश्य ही दण्ड मिलना चाहिए।

राजा ने मन्त्री को भेजकर पुछवाया कि आप क्यो नही आये?

भद्रबाहु ने कहा--मन्त्री जी! मैं अवश्य आता, पर जिस पुत्र की उम्र सिर्फ सात ही दिन की हो उसका

उत्सव क्या मनाना ?

मन्त्री—मुनिजी ! आप मिथ्या कह रहे है, वराह-मिहिर आदि सभी ज्योतिषशास्त्र निष्णात व्यक्तियो ने स्पष्ट बताया कि इस बालक की उम्र सौ वर्ष की है।

भद्रबाहु—आप इतने उतावले न बनिए। आज से सातवे दिन इस बालक की मृत्यु बिल्ली के मुह से होगी। आप स्वय देख लेंगे कि मेरा कथन सत्य निकलता है या वराहमिहिर का।

मंत्री ने जाकर भद्रबाहु का कथन राजा से निवेदन कर दिया। राजा ने महल मे से सारी बिल्लिया हटादी। सातवे दिन स्थान-स्थान पर पहरा लगा दिया कि कही से बिल्ली न आजाय।

राजपुत्र को लेकर धायमाता महल के दरवाजे में बैठी हुई दूध पिला रही थी। दरवाजे की अर्गला ठीक ढग से नही रखी हुई थी, वह बिल्ली के मुंह की आकृति की बनी हुई थी। अचानक राजकुमार पर गिरी और उसी समय उसका देहान्त हो गया।

राजा भद्रबाहु के दिव्य ज्ञान से प्रभावित हुआ। भद्र-बाहु के उपदेश को सुनकर वह जैन धर्मावलम्बी बना।

वराहमिहिर अपमान से तिलमिला उठा। वह अन्यत्र

चला गया। आयु पूर्ण होने पर वह व्यन्तर देव हुआ उस। समय पूर्व वैर को स्मरण कर जैन शासन के अनुयायियो पर उपसर्ग करने लगा, उस समय भद्रबाहु ने उवसग्गहर स्तोत्र की रचना की, जिसके पाठ से सभी उपसर्ग नष्ट हो गए।

भद्रबाहु स्वामी चौदह पूर्व के ज्ञाता थे, इसीलिए वे श्रुतकेवली कहलाते है।

दशाश्रुतस्कध, वृहत्कल्प, व्यवहार, और कल्पसूत्र उनके द्वारा रचे गये है। आवश्यक निर्युक्ति आदि दस निर्युक्ति की रचना भी उन्होने की थी। आवश्यक निर्युक्ति जैन साहित्य का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। उसमे सर्वप्रथम प्रस्तुत अवसर्पिणी काल में हुए जैन महापुरुषों का जीवन चरित्र ग्रथित है। उन्होने सवा लाख गाथाबद्ध वसुदेव चरित्र प्राकृत भाषा में लिखा था। कहा जाता है प्राकृत भाषा मे उन्होने भद्रबाहु संहिता नामक ज्योतिष ग्रन्थ भी लिखा था। जो आज अनुपलब्ध है।

आगमो की प्रथम वाचना पाटलिपुत्र में सम्पन्न हुई थी। उस समय बारह वर्ष का भयकर दुष्काल पड़ा। श्रमण संघ समुद्र के तट पर चला गया। अनेक श्रुतधर कालकवलित हो गये। दुष्काल आदि अनेक कारणो से

यथावस्थित सूत्र पारायण नहीं हो सका जिससे आगम ज्ञान की शृङ्खला छिन्न-भिन्न होगई। दुर्भिक्ष समाप्त हुआ। उस समय विशिष्ट आचार्य पाटलीपुत्र में एकत्रित हुए। ग्यारह अंग सकलित किये गये। बारहवें अंग के एक मात्र ज्ञाता भद्रबाहु स्वामी उस समय नेपाल में महाप्राणध्यान की साधना कर रहे थे। संघ के आग्रह से उन्होने स्थूलिभद्र मुनि को बाहरवे अग सूत्र की वाचना देना स्वीकार किया। दस पूर्व अर्थ सहित सिखाए, ग्यारहवे पूर्व की वाचना चल रही थी एक बार आर्य स्थूलिभद्र से मिलने के लिए, जहाँ वे ध्यान कर रहे थे वहाँ उनकी बहिने आई। बहिनो को चमत्कार दिखाने के लिए कौतुकवश स्थूलिभद्र ने सिंह का रूप बनाया। इस घटना से भद्रबाहु ने आगे वाचना देना बन्द कर दिया कि वह ज्ञान को पचा नहीं सकता। किन्तु संघ के अत्याग्रह से अन्तिम चार पूर्वों की वाचना दी, पर अर्थ नहीं बताया और दूसरो को उसकी वाचना देने की स्पष्ट इन्कारी की। अर्थ की दृष्टि से अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु ही है। स्थूलिभद्र शाब्दिक दृष्टि से चौदहपूर्वी थे और अर्थ की दृष्टि से दसपूर्वी थे।

मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त आपका अनन्य भक्त था, उनके

द्वारा देखे गये सोलह स्वप्नो का फल आपने बताया था। जिसमें पचमकाल की भविष्यकालीन स्थिति का रेखाचित्र था। श्वेताम्बर और दिगम्वर दोनो ही परम्परा भद्रबाहु को एक ज्योतिर्धर आचार्य मानती है।

३ || आर्य स्थूलिभद्र

आर्य स्थूलिभद्र जैन जगत् के वे उज्ज्वल नक्षत्र है, जिनकी जीवन प्रभा से आज भी जन-जीवन आलोकित है। मंगलाचरण में तृतीय मंगल के रूपमे उनका स्मरण किया गया है।

वे मगध की राजधानी पाटलीपुत्र के निवासी थे। इनके पिता का नाम शकडाल था, जो नन्द साम्राज्य के महामन्त्री थे। ये विलक्षण प्रतिभा के धनी और राजनीतिज्ञ थे। जब तक वे विद्यमान रहे तब तक नन्द साम्राज्य प्रतिदिन विकास करता रहा।

स्थूलिभद्र के लघुभ्राता श्रेयक थे। यक्षा आदि सात भगिनिया थी। स्थूलिभद्र जब यौवन की चौखट पर पहुँचे तब उस युग की महान् सुन्दरी कोशागणिका के रूप जाल मे उलझ गये। महापण्डित वररुचि के षड्यत्र से श्रेयक के हाथो शकड़ाल की मत्यु हुई। मन्त्रीपद को ग्रहण

करने के लिए स्थूलिभद्र से निवेदन किया, किन्तु पिता की मृत्यु से उसको वैराग्य हो गया था। उन्होने आचार्य सभूति विजय से प्रव्रज्या ग्रहण करली।

प्रथम वर्षावास का समय आया। साथी मुनियों में से एक ने सिह की गुफा मे चातुर्मास करने की आज्ञा माँगी, दूसरे ने दृष्टि-विप सर्प की बाँवी पर, तीसरे ने कुँए के कोठे पर और स्थूलिभद्र ने कोशा की चित्रशाला में। गुरु से आज्ञा लेकर स्थूलिभद्र कोशा के भव्य भवन पर पहुचे। कोशा अपने पूर्व स्नेही स्थूलिभद्र को देखकर बहुत प्रसन्न हुई। चारो ओर वासना का वातावरण था। कोशा गणिका के हाव-भाव और विभाव से भी स्थूलिभद्र चलित न हुये। किन्तु अन्त मे उनके त्यागमय उपदेश से वह श्राविका बन गई।

वर्षावास पूर्ण होने पर सभी शिष्य गुरु के चरणो में लौटे। तीनो का 'दुष्करकारक' तपस्वी के रूप में आचार्य सभूतिविजय ने स्वागत किया। स्थूलिभद्र के लौटने पर गुरु सात आठ कदम सामने गये और 'दुष्कर-दुष्कर कारक तपस्वी' कहकर उनका स्वागत किया। सिह गुफावासी मुनि यह देखकर क्षुब्ध हुआ। आचार्य ने ब्रह्मचर्य की दुष्क-रता पर प्रकाश डालकर उसे समझाया किन्तु उसका

क्षोभ शान्त नही हुआ।

दूसरे वर्ष सिहगुफावासी मुनि कोशा वेश्या के यहां पर पहुचे। वेश्या ने मुनि की परीक्षा करने के लिए ज्यो ही कटाक्ष का बाण छोडा कि मुनि घायल हो गया और व्रत भग करने के लिए प्रस्तुत हो गया।

कोशा ने मुनि को प्रतिबोध देने के लिए नेपाल नरेश के पास मे जो रत्न कम्बल है वह लाने की प्रार्थना की। विषयान्ध बना हुआ मुनि वर्षावास मे ही नेपाल पहुँचा। राजा से रत्नकम्बल लेकर लौट रहा था कि मार्ग मे चोरो ने उसे अनेक कष्ट दिए। मार्ग के सैकडो कष्टो को सहन करता हुआ वह पुन. पाटलिपुत्र पहुचा। प्रसन्नता-पूर्वक रत्नकम्बल वेश्या को प्रदान किया। वेश्या ने रत्न-कम्बल लेकर गन्दे पानी की नाली मे उसे फेक दिया। यह देखकर साधु आपे से बाहर हो गया, उसने आक्रोश-पूर्ण भाषा मे कहा—अत्यन्त कठिनता से जिस रत्नकम्बल को प्राप्त किया गया है, उसे गन्दी नाली में डालते हुए तुम्हे लज्जा नही आती।

वेश्या ने तपाक से उत्तर दिया—रत्नकम्बल से भी अधिक मूल्यवान् सयम रत्न है, उसे क्षणिक वासना के लिए भंग करना क्या संयमरत्न को गन्दी नाली में

डालना नही है।

वेश्या के एक ही वाक्य से सिंह गुफावासी मुनि काप उठा। उसे अपनी भूल मालूम हुई। उसे सद्गुरुदेव के कथन का रहस्य ज्ञात हो गया। गुरुदेव के पास जाकर क्षमा याचना की।

आचार्य स्थूलिभद्र का महत्त्व कामविजेता होने के कारण हो नही, अपितु पूर्वधारी होने के कारण भी रहा है।

वीर सवत् ११६ में इनका जन्म हुआ। तीस वर्ष की वय मे दीक्षा ग्रहण की। २४ वर्ष तक साधारण मुनि पर्याय म रहे और ४५ वर्ष तक युग प्रधान आचार्य पद पर। ९९ वर्ष का आयु भोग कर वैभारगिरि पर्वत पर पन्द्रह दिन का अनशन कर वीर संवत् २१५ मे स्वर्गस्थ हुए।

●

४ || आर्य वज्रस्वामी

अवन्ती देश मे तुम्ववन ग्राम था। वहा पर इब्भपुत्र धनगिरि था। धनगिरि एक धर्मपरायण व्यक्ति था। धनपाल श्रेष्ठी ने अपनी सुपुत्री सुनन्दा का विवाह धनगिरि के साथ करना चाहा। जव धनपाल का प्रस्ताव धनगिरि के सामने आया तव धनगिरि ने स्पष्ट रूप से प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए कहा कि—मैं विवाह नही करूगा। संयम लूगा। धनपाल के अत्यधिक आग्रह पर धनगिरि को सुनन्दा के साथ विवाह करना पड़ा, पर उसका मन संसार मे न लगा।

अपनी पत्नी को गर्भवती छोड कर ही उन्होने आर्य सिहगिरि के पास दीक्षा ग्रहण की। वाद में वच्चे का जन्म हुआ, वडा होने पर वच्चे ने महिलाओ के मुह से सुना कि पिता धनगिरि ने दीक्षा ली है। यह सुनते ही वच्चे को जातिस्मरण ज्ञान हुआ। उसने सोचा माता का मेरे प्रति

अपार मोह है क्योंकि एक मात्र मै ही उसकी आंखों का सितारा हूं। मोह के कारण माता मुझे कभी भी दीक्षा की अनुमति नही दे सकेगी अत: माता के मोह को कम करने के लिए वह दिनरात जोर-जोर से रोने लगा। माता सुनन्दा को न खाते चैन थी, न बैठे चैन थी, वह बालक से बहुत ही परेशान हो गई।

आर्य सिंहगिरि परिभ्रमण करते हुए तुम्ववन में पधारे। जब धनगिरि भिक्षा के लिए जाने लगे तब आर्य सिंहगिरि के शुभ लक्षण देखकर अपने शिष्यो को आदेश दिया कि भिक्षा में जो भी सचित्त और अचित्त वस्तु मिल जाये उसे बिना विचारे ले लेना।

धनगिरि अन्य स्थानो पर भिक्षा लेने के पश्चात् सुनन्दा के यहाँ पर पहुँचे। सुनन्दा बच्चे से ऊब गई थी। ज्यो ही भिक्षा पात्र आगे रक्खा कि सुनन्दा ने आवेश मे आकर बालक को पात्र में रख दिया। और वह बोली आप तो चले गये और इसे पीछे छोड़ दिया, रो-रोकर इसने मुझे परेशान कर लिया, अब इसे आप ले जाइए

धनगिरि—"सुनन्दा ! तुम यह निर्णय भावुकता के वश मे कर रही हो, बाद मे तुम्हे विचार न करना पड़े, यह पहले सोच लेना।"

सुनन्दा—मैंने खूब अच्छी तरह सोच लिया है। मुझे अब इसकी जरूरत नही है, इसे आप ले जाइए।

धनगिरि ने छह मास के बालक को ले लिया और लाकर गुरु को सौप दिया। अति भारी होने से बच्चे का नाम आचार्य ने वज्र रख दिया। पालण-पोपण हेतु उसे गृहस्थ को दे दिया। श्राविका के साथ वह उपाश्रय जाता! स्वाध्वियो के सम्पर्क में रहने से और निरन्तर स्वाध्याय सुनने से उसे ग्यारह अंग कठस्थ हो गए।

अब बच्चा तीन वर्ष का हुआ तब सुनन्दा ने पुनः धनगिरि से पुत्र की याचना की। धनगिरि ने कहा—अब हम इसे नही दे सकते।

सुनन्दा ने राजा से जाकर प्रार्थना की कि मेरा पुत्र मुझे मिलना चाहिए।

राजा ने आदेश दिया कि राजसभा मे एक ओर इसके पिता बैठें और दूसरी ओर इसकी माता बैठे। बीच में बालक रहे। माता प्रथम बालक को अपने पास बुलाये। यदि बालक माता के बुलाने पर उसके पास चला जाय तो बालक पर माता का अधिकार रहेगा। यदि पिता के बुलाने पर पिता के पास जायगा तो पिता का। सुनन्दा, मुनि धन-गिरि और वज्र को राजसभा में बुलाया गया। सुनन्दा अपने

साथ विविध प्रकार के खिलौने ले गई थी। मेवे-मिठाइयाँ ले गई थी, वस्त्राभूपरण ले गई थी। उन सभी को दिखा-कर वह वज्र को अपनी ओर बुलाने लगी। पर वज्र ने उधर आँख उठा कर भी नहीं देखा, जब धनगिरि ने अपने हाथ में रजोहरण लेकर बुलाया तो वज्र ने दौडकर रजोहरण उठा लिया। इसलिए राजा ने निर्णय दिया कि वज्र को मुनि धनगिरि को ही सौंपा जाय।

यह देख कर सुनन्दा को वैराग्य आया। और उसने भी दीक्षा ग्रहण की। ग्रन्थकारो का मन्तव्य है कि वज्र-कुमार ने भी तीन वर्ष की उम्र मे दीक्षा ली।

जृंभक देव ने अवन्ती मे वज्रमुनि की परीक्षा ली। देव ने एक बडा सार्थ वनाया और पडाव डालकर आहार के लिए मुनि से प्रार्थना की। गुरु के आदेश से वज्रमुनि सार्थवाह के साथ आहार के लिए गये। देव घेवर लेकर मुनि को बहराने लगा, मुनि ने उसकी ओर देखा, पलकें झपक नही रही थी। उन्होने आहार लेने से इन्कार कर दिया। देव ने उनकी प्रतिभा देखकर, लघुवय में ही वैक्रियलब्धि और आकाशगामिनी विद्या दी। एक बार उत्तर भारत मे भयङ्कर दुर्भिक्ष पड़ा। उस समय विद्या के बल से आप श्रमण सङ्घ को कलिग प्रदेश मे ले गए थे।

जब वज्रमुनि आठ वर्ष के हुए, उस समय एक दिन आचार्य सभी सन्तो के साथ बहिर्भूमि के लिए गये। वज्र-मुनि अकेले उपाश्रय में थे। सन्तों के भण्डोपकरण को लक्ष्य मे लेकर आगमों का अध्ययन करवाने लगे। अध्य-यन की शैली अत्यन्त सुन्दर थी, आचार्य आये, उन्होने मकान के बाहर खड़े रहकर सुना, बड़े प्रभावित हुए, फिर उन्होने समग्र शास्त्रो का अध्ययन करवाया। वज्र-मुनि की विद्वत्ता से प्रभावित होकर पाँचसौ मुनि उनके संघ में सम्मिलित हुए।

पाटलीपुत्र के इभ्यश्रेष्ठी धनदेव की पुत्री रुक्मिणी अनुपम सुन्दरी थी। लोगों के मुंह से उसने वज्रस्वामी के दिव्य और भव्य रूप के वखाण सुने थे, उनके गुणों की चर्चाएँ सुनी थी—उसने यह प्रतिज्ञा ग्रहण की कि वज्र-स्वामी के अतिरिक्त मैं किसी को भी पति के रूप मे ग्रहण नही करूँगी।

एक समय वज्रस्वामी पाटलीपुत्र पधारे। धनश्रेष्ठी ने भी पुत्री के साथ करोड़ों की सम्पत्ति दहेज मे देने का प्रस्ताव किया, पर तनिक मात्र भी वे कनक और कान्ता के मोह मे उलझे नहीं, किन्तु रुक्मिणी को प्रतिबोध देकर प्रव्रज्या प्रदान की।

ईस्वी सन् ६४६ में चीनी यात्री हुएनत्सॉग भारत आया था। नालन्दा से वह पुनः अपने देश जाना चाहता था किन्तु असहाय था। उस समय वज्रस्वामी ने उससे कहा—तुम चिन्ता न करो। असम के राजा कुमार और कान्यकुब्ज के राजा श्रीहर्ष तुम्हारी सहायता करेंगे। राजा कुमार का दूत तुम्हे लिवाने के लिए आ रहा है। वज्रस्वामी की ये भविष्यवाणियां पूर्ण सत्य सिद्ध हुईं। हुएनत्सांग ने अपनी यात्रा की पुस्तक में उनका महान् भविष्य द्रष्टा के रूप मे उल्लेख किया है।

एक बार वज्रस्वामी को कफ की व्याधि हो गई। तदर्थ उन्होने एक सोंठ का टुकड़ा भोजन के पश्चात् ग्रहण करने हेतु कान में डाल रखा था। पर वे उसे लेना भूल गये। साध्य प्रतिक्रमण के समय वन्दन करते समय वह नीचे गिर गया। अपना अन्तिम समय सन्निकट समझ अपने शिष्य वज्रसेन से कहा—द्वादश वर्षीय दुष्काल पड़ेगा, अत साधु संघ के साथ तुम सौराष्ट्र और कोकण प्रदेश में जाओ और मैं रथावर्त्त पर्वत पर अनशन करने जाता हूँ। जिस दिन तुम्हे लक्ष मूल्य वाले चावल मे से भिक्षा प्राप्त हो उसके दूसरे दिन सुकाल होगा, ऐसा कह आचार्य सथारा करने हेतु चले गये।

वज्रस्वामी का जन्म वीर निर्वाण सं. ४९६ में हुआ। ५०४ में दीक्षा ली। ५३६ में आचार्य पद पर आसीन हुए और ५८४ मे स्वर्गस्थ हुए।

आर्य वज्रस्वामी के पट्ट पर आर्य वज्रसेन आसीन हुए। वज्रस्वामी की भविष्यवाणी के अनुसार उस समय भयंकर दुष्काल पड़ा। निर्दोष भिक्षा का मिलना असम्भव हो गया जिसके कारण ७८४ श्रमण अनशन कर परलोक-वासी हुए।

भूख से सभी छटपटाने लगे। जिनदास श्रेष्ठी ने एक लाख दीनार से एक अंजलि अन्न मोल लिया। वह दलिया मे विष मिला कर रखने की तैयारी कर रहा था कि वज्रस्वामी के कहने के अनुसार आचार्य वज्रसेन ने सुभिक्ष की घोषणा की और सभी के प्राणो की रक्षा की। दूसरे दिन अन्न से परिपूर्ण जहाज आ गये। जिनदास ने वह अन्न खरीद लिया और गरीब व्यक्तियों को बिना मूल्य लिये वितरण कर दिया। कुछ समय के पश्चात् वर्षा हुई सर्वत्र आनन्द की उर्मियां उछलने लगी।

वज्रस्वामी के चमत्कारो की अनेक घटनाए जैन साहित्य मे प्रसिद्ध है।

५ || आचार्य हरिभद्र

जिस समय चित्रकूट (चित्तौड) पर राणा जितारी का राज्य था उस समय आचार्य हरिभद्र सूरि का अग्निहोत्री ब्राह्मण कुल मे जन्म हुआ। वे सूक्ष्म प्रतिभा के धनी थे। उन्होने चौदह विद्याओ मे पूर्ण योग्यता प्राप्त की थी। नन्ही उम्र मे ही योग्यता के कारण राजपुरोहित पद को अलकृत किया था। उन्हे यह अभिमान सताने लगा कि मेरे समान इस भूमण्डल पर कोई भी विद्वान नही है। मैंने दिग्गज कहे जाने वाले बड़े-बड़े विद्वानों को परास्त कर दिया है। वे अपने हाथ मे जम्बू वृक्ष की एक शाखा रखते थे जो इस बात की प्रतीक थी कि जम्बूद्वीप में उनके समान कोई अन्य विद्वान् नही है। वे अपने पेट को सोने के पट्ट से बांधे रखते थे कि कही ज्ञान की अधिकता से वह फट न जाए। वे प्रसिद्ध चर्चावादी थे। वे अपने साथ सदैव कुदाल, जाल और सीढी रखा करते थे।

कोई उनसे कारण पूछता तो वे कहते—प्रतिवादी शास्त्रार्थ में परास्त होकर यदि कोई रसातल में चला जाए तो मैं कुदाल से भूमि को खन कर उसे बाहर निकाल लू यदि जल में चला जाए तो जाल फैककर उसे बाहर खीच लूँ और यदि आकाश में उड़ जाय तो सीढी पर चढ कर उसे नीचे उतार लू।

इतना अहंकार होने पर भी उन्होने एक प्रतिज्ञा ग्रहण कर रखी थी जो उनके विनय और ज्ञान पिपासा की परिचायिका थी। वह प्रतिज्ञा थी—जिसके द्वारा उच्चा-रित वाक्य का मैं अर्थ-बोध नही कर पाऊँगा उसका शिष्य बन जाऊँगा। प्रस्तुत प्रतिज्ञा ने उनके जीवन की दिशा ही बदल दी।

एक बार वे शिविका मे बैठकर राजप्रासाद से घर की ओर जा रहे थे। शिविका के साथ सैकडो व्यक्ति भी थे जो 'सरस्वती कंठाभरण, वैयाकरणप्रवण, न्याय-विद्याविचक्षण, वादिमतंगजकेशरी, आदि विरुदावली वाक्यो से नभोमडल गूजा रहे थे। उस समय कृष्णकाय एक प्रचण्ड हाथी पागल हो गया था जो जनता को अपने पैरो से रोदता हुआ आ रहा था। सभी लोग चिल्लाने लगे दौड़ो, भागो, पकड़ो! विरुदावली बोलने वाले और

शिविका उठाने वाले सभी नौ-दो-ग्यारह हो गये। राज-पुरोहित हरिभद्र अकेले रह गए।

उस समय वे उपाश्रय के पास खडे रहे। साध्वियां—स्वाध्याय कर रही थी। उनके मुह से एक गाथा का उच्चारण हुआ :—

चक्कि दुग्गं हरिपणगं, पणगं
चक्कीण केसवो चक्की।
केसव चक्की, केसव दुचक्कि
केसी अ चक्की अ॥

पद्य हरिभद्र के कानो मे गिरा, उन्होने उसके अर्थ का विमर्षण किया, पर उसका हार्द अवगत न हो सका। वे झुंझला उठे। उन्होने उपाश्रय में प्रवेश किया। उपाश्रय में वृहद्गच्छ के आचार्य जिनभद्र सूरि की शिष्या महत्तरा याकिनी ठहरी हुई थी। सूर्य अस्त हो चुका था, इसलिए मकान में पुरुष को आते देखकर टोका। हरिभद्र ने पूछा—अभी आप 'चिकचिकाट' क्या कर रही थी ?

महत्तरा याकिनी ने कहा—'चिकचिकाट' तो गोबर से लीपा गया गीला आगन किया करता है।

हरिभद्र का अहं कुछ शिथिल हुआ। उन्होने नम्रता के साथ कहा—कृपया! आप मुझे उस पद्य का अर्थ बताएं।

मैं उसे जानने के लिए अत्यन्त उत्सुक हूँ।

महत्तरा याकिनी ने कहा—यदि आपकी तीव्र जिज्ञासा है तो हमारे आचार्य जिनभद्र सूरि इसी शहर में वर्षावास हेतु विराजमान है। वे आपको विशेष बोध प्रदान कर सकेंगे वहां जाइए।

हरिभद्र—आप चलिए, मेरा उनसे परिचय करा दीजिए।

याकिनी महत्तरा—हम रात्रि में विशेष शारीरिक कारण को छोड़कर बाहर नही जाती हैं। प्रात काल ही मैं आपका उनसे परिचय करा दूंगी।

राजपुरोहित हरिभद्र को रात भर नीद ही नही आई। वे उसी गाथा का अनुचिन्तन करते रहे। प्रातः-काल याकिनी महत्तरा के साथ आचार्य के चरणो में उप-स्थित हुए और अपनी जिज्ञासा प्रस्तुत की। आचार्य ने उनको अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाया और कहा—इस गाथा का अर्थ पूर्वापर सन्दर्भो से ही जाना जा सकता है उसके लिए आर्हती दीक्षा और विशिष्ट तप स्वीकार करना होगा।

हरिभद्र वास्तविक जिज्ञासु थे। उन्होने बिना ननुनच के यह स्वीकार किया कि जो भी शर्तें हैं वे स्वीकार है।

जिनभद्र सूरि समयज्ञ थे। उन्होंने हरिभद्र को दीक्षा प्रदान की। वे साधना और ज्ञान मे लीन हो गए। सूक्ष्म प्रज्ञा और परिश्रम का समन्वय होने से कुछ ही समय में वे जैन सिद्धान्तो के उच्चतम ज्ञाता, व्याख्याता और अनु-संधाता हो गये। साधना का गौरव उनके प्रत्येक कार्य में निखरने लगा। उनकी प्राप्ति से जैन संघ को विशेष गौरव की अनुभूति हुई।

योग्य पुत्र और योग्य शिष्य को प्राप्त कर पिता और गुरु को विशेष प्रसन्नता होती है। आचार्य जिनभद्र ने योग्य समझकर हरिभद्र को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया।

आचार्य हरिभद्र के हंस और परमहस ये दो भानजे थे। एक बार पिता के व्यंगबाण से व्यथित होकर घर से बाहर निकल गये। आचार्य हरिभद्र का उधर शौच भूमि के लिए जाना हुआ, चिन्तानुर देखे, कारण पूछा तो उन्होने बताया कि ऐसे गृहस्थाश्रम से साधु बनना श्रेष्ठ है, यदि आप स्वीकार करे तो हम तैयार है।

हरिभद्र—यदि तुम्हारी भावना सुदृढ़ है तो मैं दीक्षा दे सकता हूँ।

आचार्य हरिभद्र की अनुज्ञा प्राप्त कर हंस और परम-

हंस अत्यधिक प्रसन्न हुए। उन्होंने दीक्षा ग्रहण की। दोनों ही बालक प्रतिभाशाली थे। पाठ को शीघ्र ही हृदयंगम कर लेते थे। एक बार प्रमाण-शास्त्र का प्रसंग चल रहा था। आचार्य ने कहा—बौद्धो का प्रमाणशास्त्र बहुत ही कठिन है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि मेरे श्रमण इस सम्बन्ध मे विशेष योग्यता प्राप्त करे।

हस और परमहंस को प्रबल प्रतिभा के साथ साहस भी विरासत में मिला था। उन्होने नम्र निवेदन किया कि यदि आप हमें आज्ञा प्रदान करे तो उस दुरवबोध शास्त्र को भी हम सरल बना सकते है।

हरिभद्र—यह महान कार्य यहाँ पर नही हो सकता, इसके लिए बौद्ध विहार मे जाकर छद्मवेष में अध्ययन करना होगा।

हंस-परमहंस—कृपया यह बताए कि इस प्रकार का बौद्ध विहार कहां है ? जहा हम जा सके।

आचार्य हरिभद्र—यह दु साहस है। मैं इसके लिए तुम्हे आज्ञा नही दे सकता।

कुछ समय मौन रहकर हंस-परमहस ने अत्यन्त नम्रता के साथ निवेदन किया। आचार्य प्रवर ! हम उस कारण को जानना चाहते है ?

आचार्य हरिभद्र की मुख-मुद्रा गम्भीर हो गई। वे कुछ क्षणो तक चिन्तन करते रहे अन्त में उन्होने कहा-- "मेरा निमित्त शास्त्र इस प्रकार बोल रहा है कि वहा पर कुछ अनिष्ट की आशका है। इसलिए तुम यही पर अध्ययन करो।"

हस-परमहंस ने कहा—गुरुदेव ! आपका मंगलमय शुभ नाम हमारे लिए अनिष्ट नाशक मन्त्र हैं। हमारा दृढ़ विश्वास है कि उसके सामने कोई भी विघ्न ठहर नही सकता। आप प्रसन्नता पूर्वक हमें आशीर्वाद प्रदान करे जिससे हम शीघ्र ही सफलता प्राप्त कर लौटे।

निमित्त शास्त्र के पर्यालोचन और शकुन शास्त्र के विचार से आचार्य हरिभद्र का चिन्तन उन्हे आज्ञा देने से रोक रहा था। इधर हंस परमहस का बाल हठ शीघ्र ही प्रस्थान करने के लिए मचल रहा था। वे शीघ्र ही आदेश और आशीर्वाद के लिए व्यग्र हो रहे थे। जब शिष्य किसी भी परिस्थिति में रुकने को तैयार नही हुए तो भवितव्यता के नियोग को स्वीकार कर हरिभद्र ने रुन्धे हुए कठ से उनको आदेश प्रदान किया।

दोनो मुनि आचार्य के आदेश व आशीर्वाद को प्राप्त कर अत्यन्त छद्मरीति से वे वहाँ से चल पड़े। बौद्ध

विहार काफी दूर था। दुर्गम पर्वतों, भयानक जंगलो और विपम नदियों को पार कर वे वहाँ पहुँचे। विनीत स्वभाव और वाक् चातुर्य के कारण उनको शीघ्र ही बौद्ध विहार में स्थान मिल गया। भोजन के लिए विशाल दानशाला थी। रहने के लिए सुन्दर आवास था। बौद्ध आचार्य वहाँ के अध्यापक थे, जिनमें विद्वत्ता के साथ वात्सल्य भी था। हजारो छात्र उस बौद्ध विहार मे पढते थे।

छद्म वेष में व्यक्ति अपने को लम्बे समय तक छुपा नही सकता। कभी उसकी कलई खुल ही जाती है। हस और परमहंस दोनो अध्ययन में लीन थे। उनकी प्रत्युत्पन्न मेधा से आचार्य अत्यधिक प्रभावित थे। जब वे सहअध्ययन से विरत हो जाते तब वे दोनो एकान्त-शान्त स्थान मे बैठ कर अधीत पाठ का पुनरावर्तन करते और बौद्ध प्रमाण शास्त्र के दूपणो को लिपिबद्ध करते हुए जैन तर्कों का भी उसमे समावेश करते। उनका यह क्रम लम्बे समय तक चलता रहा। वे पूर्ण सजग थे। पर नीयति की प्रबलता से हंस और परमहस द्वारा लिखे हुए पन्ने आँधी और तूफान आने से उड़ गये किन्तु उनको पता न रहा। दूसरे छात्रो के हाथ मे वे पन्ने लगे, पर वे नही समझ पाये कि जैन और बौद्ध प्रमाण शास्त्र से सम्बन्धित इन

तर्कों का क्या रहस्य है। वे कुछ-कुछ संदिग्ध हुए। उन्होने वे पन्ने आचार्य के समक्ष उपस्थित किये, आचार्य को यह समझने में देर न लगी कि जैन प्रमाण शास्त्र के अकाट्य तर्कों के आधार पर प्रमाण को निरस्त करने का यह एक उपक्रम किया गया है। आचार्य ने जैन प्रमाण शास्त्र के तर्कों का खण्डन करना चाहा, पर वे न कर सके। उन्हे यह अनुभव हुआ कि जैन तर्क अधिक वजनदार है। ज्ञान होता है कि छद्मवेष में कोई जैन यहाँ अध्ययन कर रहा है यदि उसे नही पकड़ा गया तो बौद्ध सघ के लिए अत्यन्त घातकसिद्ध होगा। आचार्य की आँखे लाल हो गईं, उनकी धमनियो मे खून का वेग बढ गया, वे मन ही मन गुनगुनाने लगे, "देखा इन व्यक्तियो का दुःसाहस ! छद्मवेष में रह कर बौद्ध संघ का वे इतना भयकर अपमान कर रहे है, क्या उन्हे ज्ञात नही है यहाँ का राजा वुद्ध का परम उपासक है, यदि उसे यह ज्ञात हो जाये तो वह शत्रु का पूर्ण संहार कर सकता है।"

कुछ क्षणो तक आचार्य चिन्तन करते रहे अन्त में युक्ति से उन्होने पता लगा लिया। उन्हें मार डालने का वह विचार कर ही रहा था कि, हस और परमहस दोनो वहाँ से भाग गये। उनका पीछा किया गया। हस को मार्ग

मे ही मार दिया गया। परमहस राजा सूरपाल की सहायता से आचार्य हरिभद्र के पास पहुँचा, और आचार्य से पिछली करुण कथा कहते-कहते स्वर्गवासी हो गया।

इस घटना से बौद्धो के प्रति हरिभद्र के मानस मे क्रोध का दावानल सुलग उठा। वे प्रतिशोध लेने के लिए राजा सूरपाल के पास गये। वहाँ पर वौद्धो के साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थ मे शर्त यह थी कि जो हारेगा उसे उबलते हुए कडाह में गिरना पडेगा। पराजित होने पर कितने ही वौद्ध पण्डितो को प्राणों की आहुति देनी पडी। जव आचार्य जिनभद्र सूरि को यह वात ज्ञात हुई तो उन्होने शिष्यो के साथ गाथाएँ भेजी जिनमे दो जीवो का वर्णन था। एक क्रोध के कारण अनन्त संसार मे परि-भ्रमण करता है और दूसरा क्षमा के कारण मुक्ति को वरण करता है। इन गाथाओ को पढते ही उन्हे अपने दुष्कृत्य पर पश्चाताप हुआ। १४४४ बौद्धो के संहार का जो भीपण सकल्प मन मे था उसका परित्याग कर, उसके प्रायश्चित स्वरूप १४४४ ग्रन्थो के निर्माण की प्रतिज्ञा की। और इन गाथाओ के आधार पर 'समराइच्च कहा' नामक ग्रन्थ वनाया।

राजेश्वर सूरि ने प्रबन्धकोश मे और मुनि क्षमा-

कल्याणजी ने खतरगच्छ पट्टावली में बौद्धों के साथ शास्त्रार्थ का उल्लेख नही किया है, किन्तु मन्त्रो के द्वारा उनके नाश की बात कही है। और साथ ही हरिभद्र के क्रोध को शान्त करने का श्रेय जिनभद्र को न देकर याकिनी महत्तरा को दिया है।

आचार्य हरिभद्र ने महत्त्वपूर्ण जैन साहित्य का सृजन कर धर्म की अत्यधिक प्रभावना की।
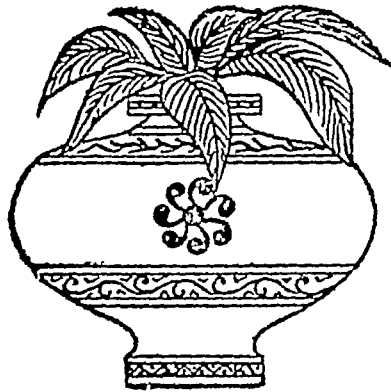
६ || सिद्धसेन दिवाकर

विक्रम की प्रथम शताब्दी की घटना है। एक वार आचार्य वृद्धवादी उज्जैन की ओर जा रहे थे। मार्ग में उन्हे चार वेद, और अठारह पुराणो के ज्ञाता व छह दर्शनो के निष्णात पण्डित सिद्धसेन मिले। सिद्धसेन ने आचार्य वृद्धवादी को शास्त्रार्थ की चुनौती दी। आचार्य ने कहा—इस जगल मे किस प्रकार शास्त्रार्थ किया जाय ? क्योकि जय और पराजय का निर्णय करने के लिए किसी मध्यस्थ व्यक्ति की आवश्यकता है।

सिद्धसेन—मुझे बिना शास्त्रार्थ किये चैन नही पड रहा है। आप इन गोपाल बालो को ही अपना मध्यस्थ चुन लीजिये। ये जो निर्णय देगे वह मुझे स्वीकार होगा।

वृद्धवादी ने सिद्धसेन की बात स्वीकार करली। सिद्धसेन ने अपने पाण्डित्य का परिचय देने के लिए अत्यन्त क्लिष्ट संस्कृत भाषा में दार्शनिक चर्चाएँ प्रारम्भ की

किन्तु गोपाल बाल संस्कृत भाषा में की गई दार्शनिक चर्चा को न समझ सके। उन्होने कहा–तुम पढे लिखे नही हो, व्यर्थ की वकवास वन्द करो। अब इस वृद्ध बाबा को भी बोलने दो।

वृद्धवादी समय के जानकार एक अनुभवी साधक थे। वे गोपालो की भाषा में नाटकीय ढंग से ऊचे स्वर में गाने लगे—

नवि मारीइं नवि चोरीइं
परदारा गमन न कीजइं ॥
थोडास्युं थोडु दीजई
तउं टगिमगि सग्गि जाइइं ॥

गायन प्रधान इस प्रकार उपदेश को सुनकर गोपाल अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होने अपना निर्णय दिया कि सिद्धसेन हारे है और वृद्धवादी जीते है।[1]

---

१. गोवालिया उठ्या गहगही, हरखित ताली देता सही।
भलो यही ज घरडो डोकरउं, नही भणियो जे हीज छोकरउ॥
भट्ट जे बोल्या भूत पल्लाप, फोड्या कान विधायो आप।
जीत्यो घरडो हर्‍यो तु हल्ल, पाये लागो करइए गुरमल्ल।

सिद्धसेन ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार वृद्धवादी का शिष्यत्व स्वीकार किया। उसका नाम आचार्यदेव ने कुमुदचन्द्र रखा। जैन साहित्य का उन्होंने गभीर अध्ययन किया। आचार्य वृद्धवादी ने सर्वगुणसम्पन्न समझकर कुमुदचन्द्र को आचार्य पद प्रदान किया और उनका प्रसिद्ध नाम आचार्य सिद्धसेन रख दिया।

एक समय आचार्य सिद्धसेन उज्जैन विराज रहे थे उस समय राजा विक्रमादित्य ने आचार्य सिद्धसेन की परीक्षा के लिए मन ही मन नमस्कार किया। आचार्य ने उसके मनोभावो को जानकर उच्च स्वर से उसे धर्मलाभ कहा। राजा आचार्य श्री की प्रबल प्रतिभा को देखकर मन ही मन प्रसन्न हुआ, और कहा--वस्तुतः आप सर्वज्ञ पुत्र है ?

आचार्य सिद्धसेन एक वार पूर्व देश के कुमरी नगर में पधारे। वहाँ का राजा देवपाल था, आचार्य की प्रबल प्रतिभा से प्रभावित होकर जैन धर्म स्वीकार किया और आचार्यदेव का परम भक्त बन गया।

एक समय विजय वर्मा नामक राजा ने उस पर चढाई कर दी। देवपाल घबराया। आचार्य श्री से प्रार्थना की। आचार्य ने सुवर्ण विद्या से सोना और सरसप विद्या

से सैकड़ो वीर योद्धा तैयार कर दिये जिससे राजा देवपाल ने सिद्धसेन को दिवाकर की उपाधि से अलंकृत किया तथा छत्र, चवर, पालकी, आदि राजसी ठाट अर्पित किये। आचार्य ने अपनी मर्यादा को विस्मृत करके उसका उपयोग करना प्रारम्भ किया।

जब यह बात आचार्य वृद्धवादी को ज्ञात हुई तो उन्हे अत्यधिक खेद हुआ। अपने योग्य शिष्य का उद्धार करने के लिए आचार्य वृद्धवादी वेश परिवर्तन कर कुमरिनगर मे आये। जब सिद्धसेन दिवाकर सुखासन पर आरूढ होकर राजमार्ग से जा रहे थे तब वृद्धवादी उनके पास मे आये और उन्होने एक गाथा कही—

अणहुंल्ली फूल्ल म तोडहु,
मन आराम म मोडहुं।
मण कुसुमेंहिं अच्चिनिरंजणु,
हिंडइ कांइवणेणवणु॥

आचार्य सिद्धसेन ने बहुत उपयोग लगाया पर गाथा का सही अर्थ ध्यान मे नही आया। वे आडा-टेढा उत्तर देने लगे। तब वृद्धवादी ने कहा—आप सही अर्थ बताइए।

सिद्धसेन—मुझे ध्यान मे नही आ रहा है। आप ही

बताने का कष्ट करे ।

वृद्धवादी—यह मानव देह जीवन रूप कोमल फूलो की लता है । इसके जीवनाग रूप कोमल फूलो को तुम राज सत्कार व तज्जन्य मिथ्याभिमान के प्रहारो से मत तोड़ो । मन के यम नियमादि उद्यानो को भोग विलास के द्वारा नष्ट न करो । मन के सद्‌गुण पुष्पो से निरजन भगवान् की अर्चना करो, तुम सासारिक मोह लोभ मे क्यो भटक रहे हो ?

आचार्य सिद्धसेन को अपनी भूलों का ज्ञान हुआ । सोचा, बिना गुरु के मुझे इस प्रकार कोई कह नही सकता । गहराई से देखा, यह तो मेरे गुरु वृद्धवादी हैं । वे गुरु के चरणो में गिर पडे । गुरुदेव ने योग्य प्रायश्चित देकर उनका शुद्धीकरण किया ।

जिनधर्म की प्रभावना करते हुए अन्त में आचार्य सिद्धसेन समाधिपूर्वक अनशन कर स्वर्ग पधारे ।

वहाँ का वैतालिक नामक चारण उज्जैन आया । उस समय सिद्धसेन की बहिन सिद्धश्री साध्वी ने उस चारण से सिद्धसेन दिवाकर के समाचार पूछे । चारण का चेहरा मुरझा गया उसने कहा—

स्फुरन्ति वादि खद्योता :,
साम्प्रतं दक्षिणापथे ।

इस समय दक्षिण देश मे वादी रूपी खद्योत स्फुरायमान हो रहे है। यह सुनते ही सिद्धि श्री साध्वी ने कहा–

नूनमस्तंगतोवादी,
सिद्धसेनो दिवाकर ।

निश्चय ही सिद्धसेन दिवाकर का स्वर्गवास हो गया है इसीलिए वादी स्फुरायमान हो रहे है। उस साध्वी ने भी उसी समय अनशन कर भाई का अनुसरण किया।

७ आचार्य श्री हीरविजयजी

एक समय बादशाह अकबर राजप्रासाद के गवाक्ष में बैठे हुए नगर का अवलोकन कर रहे थे। उन्होंने देखा एक बहुत बडा जुलूस आ रहा है। नगर के प्रतिष्ठित श्रेणी के लोग उस जुलूस मे है।

बादशाह ने पण्डित टोडरमलजी से पूछा—यह जुलूस किसका है ? क्या किसी की शादी है ?

पण्डित टोडरमलजी ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा, यह शादी का जुलूस नही है किन्तु यहाँ पर एक चम्पा बहिन नामक जैन श्राविका है, उसने छ महीने के उपवास किये है। उस दीर्घ तपस्या के उपलक्ष में यह जुलूस निकाला जा रहा है।

जुलूस राजमहलो के सन्निकट आ गया। बादशाह ने पूछा—बताओ इस जुलूस मे वह बहिन भी है क्या ?

टोडरमलजी ने निवेदन किया—वह तपस्विनी बहिन

भी इस जुलूस मे साथ ही है।

बादशाह ने उसके दर्शन करने के लिए, अपने समझदार व्यक्तियो को भेजा और चम्पा बहिन को अपने पास बुलाया।

चम्पा बहिन उपस्थित हुई। बादशाह ने पूछा–तुमने कितने उपवास किये है ? उपवास मे तुमने क्या खाया ? और किसलिए ये उपवास किये है।

चम्पा बहिन—बादशाह प्रवर ! मैंने जैनविधि के अनुसार उपवास किये है। इन छ महीनो मे दिन मे जब कभी मुझे प्यास लगती तब मैं गर्म पानी थोड़ा-सा ग्रहण करती रही हूँ। इसके अतिरिक्त कोई भी पदार्थ मैंने मुह मे नही डाला। दूसरी बात—भौतिक पदार्थों की अभिलाषा से मैंने यह तप नही किया है, केवल आध्यात्मिक दृष्टि ही प्रमुख रही है।

बादशाह—मुसलमान भाई एक महीने तक रोजा करते है, वे लोग आवश्यकतानुसार रात को खाते है तथापि उन्हे बहुत कष्ट होता है, तुमने तो दिन और रात में छः महीने तक कुछ भी न खाकर कमाल ही कर दिया है।

चम्पा बहिन–बादशाह प्रवर ! मुझ अबला मे क्या

शक्ति है, पर मेरे सद्‌गुरुदेव श्री हीरविजयजी के शुभाशीर्वाद से ही मैं यह लम्बा तप कर सकी हूँ।

बादशाह–क्या तुम्हारे गुरु हीरविजय है ? बताओ वे इस समय कहाँ है ?

चम्पा–वे इस समय गुजरात प्रान्त के गंधार शहर में है।

बादशाह–अच्छा, तो अब तुम जा सकती हो, मैं उन्हे अपने यहाॅ बुलाने के लिए अभी ही पत्र लिख देता हूँ। अकबर बादशाह ने अहमदाबाद के सूबेदार शहाबुद्दीन अहमद खा के नाम पर एक फरमाना लिख दिया कि जैन साधु श्री हीरविजय सूरि को यहाॅ शीघ्र दरबार मे भेजो।

बादशाह का निमन्त्रण पाकर सूरिजी ने गुजरात से फतहपुर सीकरी की ओर प्रस्थान किया। सम्वत् १६३६ के ज्येष्ठ महीने मे वे फतहपुर सीकरी पधारे। अकबर के प्रधान मन्त्री अबुलफजल ने सूरिजी का स्नेह भरा स्वागत किया फिर सूरिजी से कुरान आदि के सम्बन्ध मे अनेक प्रश्न किये। योग्य उत्तर सुनकर वह बहुत ही प्रसन्न हुआ।

बादशाह के आग्रह पर वे दरबार मे गये। गलीचे

बिछे हुए थे, सूरिजी अपने शिष्यो सहित वही खड़े रह गये ।

बादशाह—आप आगे आइये !

सूरिजी ने कहा—इन गलीचो पर हम पैर नही दे सकते; क्योकि सभव है कि इसके नीचे कही चीटी आदि जीव जन्तु हो ।

बादशाह—यहाँ राजमहल मे चीटी आदि जन्तुओं की संभावना कैसे हो सकती है, तथापि आपकी शका के निवारण के लिए हम उसे उठाकर देख लेते है । ज्यो ही गलीचे का कुछ भाग उठाकर देखा तो नीचे चीटिया कुलबुला रही थी । बादशाह के आश्चार्य का पार न रहा । उसे जैन श्रमणो के आचार पर सहज रूप मे निष्ठा जागृत हुई । बादशाह ने अनेक विषयो पर उनसे विचार चर्चा की ।

उस समय अकबर के पास बहुत सारा जैन साहित्य आया हुआ था । बादशाह ने कहा—आप जैन साधु है इसलिए अन्य कोई भी धन-दौलत ग्रहण नही करेगे पर ये जैन ग्रन्थ तो आप ग्रहण कर ही सकते है ।

सूरि—आपका कथन ठीक है पर मैं इन ग्रन्थों को भी ग्रहण नही करूंगा क्योकि जैन श्रमणाचार की दृष्टि से

हम उतनी ही वस्तु लेते है जितनी हम स्वय उठा सकते है। जब कभी हमे ग्रन्थ देखने की आवश्यकता होती है तब जैन भण्डारो मे से वे ग्रन्थ अवलोकन करने के लिए हमे मिल ही जाते है। हम जितने परिग्रह से दूर रहे उतना ही हम साधुओ के लिए श्रेयस्कर है।

आगरा वर्षावास पूर्ण कर पुन हीरविजयसूरि अकबर से मिले। उस समय बादशाह की प्रार्थना पर हीर विजय सूरि ने कहा--आठ दिन पर्युषण के और अन्य चार दिन इस प्रकार बारह दिन तक आपके राज्य मे पूर्ण जीव हिसा बन्द रहे।

बादशाह ने उसी समय उनके कथनानुसार परवाना लिख दिया, और जगद्गुरु की उपाधि से उनको अलकृत किया।

—श्वे. जैन, आगरा अक--१-४-५५ के आधार से।

८ || रत्नाकर सूरि

श्री रत्नाकरसूरि बडे ही प्रतिभासम्पन्न आचार्य थे। उन्होने अपनी प्रवल मेधा शक्ति से अनेको ब्राह्मण पण्डितो को पराजित कर दिया। राजा ने प्रसन्न होकर पालखी, तथा बहुमूल्य हीरे, पन्ने, माणक मोती आदि जवाहरात देकर उनका सत्कार किया। प्रतिदिन रत्नाकर सूरि पालखी मे वैठकर राजसभा मे जाते और विद्वानो से शास्त्रार्थ करते।

एक दिन पालखी मे बैठकर वे राजसभा में जा रहे थे। ब्राह्मण पण्डित व राज्य कर्मचारी जय-जयकार के गगन भेदी नारे लगा रहे थे।

कु डलिक श्रावक जो घी का व्यापार करने के लिए अन्य नगर से उस नगर मे आया था। पालखी में बैठकर जाते हुए रत्नाकर सूरि को देखकर स्तभित हो गया। सोचा—पालखी में वैठना, रत्न आदि रखना क्या एक शासन प्रभा-

वक आचार्य के लिए उचित है। किन्तु मैं साधारण श्रावक इन महान् आचार्य को किस प्रकार समझा सकता हूँ। किन्तु जरा परीक्षा कर देखूं तो सही ये आचार्य आंशिक रूप मे ही भ्रष्ट हुए है या पूर्ण रूप से भ्रष्ट हुए है।

उसने उसी राजमार्ग पर खड़े होकर आचार्य देव की स्तुति करते हुए कहा--भगवन् ! आपश्री को देखकर ही मैंने गौतम स्वामी, सुधर्मा स्वामी, जम्बूस्वामी, प्रभव स्वामी और अन्य युग प्रधान आचार्यों को देख लिया है इस प्रकार मानता हूँ।[1]

यह स्तुति सुनते ही आचार्य का मुख म्लान हो गया। उन्होने स्पष्ट शब्दो में कहा--कौए को हस की उपमा देना अनुचित है। उन महान् गुणी आचार्यो के चरण रज की प्रतिस्पर्धा भी मैं नही कर सकता, कहाँ वे चारित्र के धनी पुण्य आत्माए और कहाँ मैं। उनके जीवन की अप्रमत्त अवस्था एक क्षण भी मेरे जीवन मे आ जाय तो मेरा जीवन धन्य हो जाय।

आचार्य देव के मुह से यह बात सुनकर श्रावक सोचने

---

१ गोयम सोहम्म जवूप्पभवो, सिज्जंभवो अ आयरिया।
अन्ने वि जुगप्पहाणा, तुहदिट्ठे सव्वेवि ते दिट्ठा ॥

लगा ! आचार्य पूर्ण रूप से तो भ्रष्ट नहीं हुए है। वीतराग देव के वचनो पर इनकी पूर्ण निष्ठा है, ये अपने जीवन को अवश्य ही सुधार सकते है।

दूसरे दिन वह श्रावक उपाश्रय गया। आचार्य श्री प्रवचन कर रहे थे। उनके गम्भीर विद्वत्तापूर्ण प्रवचन को सुनकर उसके हृत्तन्त्री के तार झनझना उठे कि आचार्य देव वस्तुतः महान् विद्वान् है। प्रवचन के पश्चात् श्रावक ने प्रार्थना कि आप मुझे कृपया इस गाथा का अर्थ बतावे। गाथा को देखकर आचार्य एक क्षण स्तभित हो गए किन्तु दूसरे ही क्षण मुस्कराते हुए उन्होने उस गाथा का नवीन अर्थ प्रस्तुत किया किन्तु श्रावक को चाहिए था मूल अर्थ। उसने अर्थ को सुनकर कहा—गुरुदेव ! आपकी बुद्धि बडी तीक्ष्ण है, आपने इस गाथा का मुझे नवीन अर्थ बताया है। कल मैं प्रवचन मे आऊँगा उस समय कृपया इसका मूल अर्थ बताइएगा।

दूसरे दिन श्रावक ने पुन गाथा का मूल अर्थ समझाने की प्रार्थना की, किन्तु आचार्य ने पुन नवीन अर्थ प्रस्तुत किया। इस प्रकार वह श्रावक प्रतिदिन पूछता रहा और आचार्य उसी गाथा का नूतन-नूतन अर्थ करते रहे। छः माह का लम्बा समय पूर्ण हो गया।

एक दिन श्रावक ने निवेदन किया—गुरुदेव ! आपकी विद्वता का उत्कीर्तन मैं नही कर सकता। आप श्री ने एक ही गाथा के छ: माह तक नित्य नवीन अर्थ बताए है, पर मैं आपश्री के मुखारविन्द से उसका मूल अर्थ सुनना चाहता था पर मेरी आशा पूर्ण न हो सकी। घी बेचकर जितना पैसा कमाया था, वह भी इन छ महिनो में पूर्ण हो गया। अब कल मै जा रहा हूँ।

आचार्य ने कहा श्रावक ! कल मैं तुम्हारे को सही अर्थ वताऊँगा। श्रावक के जाने पर आचार्य ने सोचा—अरे ! मैं कितना चारित्र से भ्रष्ट हो गया हूँ। श्रमणाचार की मर्यादा को भूलकर मैंने बहुमूल्य हीरे-पन्ने, माणिक, मोती इकट्ठे किये। राजसी ठाठ-वाट को अपनाया। आचार्य ने वह सारा परिग्रह छोड दिया। और एक सच्चे सन्त की तरह वनकर बैठ गये।

दूसरे दिन श्रावक आया। रत्नाकर सूरि के जीवन में आमूल चूल परिवर्तन देखकर अत्यधिक प्रभावित हुआ। श्रावक ने कहा—गुरुदेव ! आज मेरा जीवन धन्य हो गया है। अब मैं गाथा का सही अर्थ समझ गया।

आचार्य ने कहा—मैं स्वय इतने समय तक परिग्रह के दल-दल मे फसा हुआ था, इसलिए गाथा का मूल अर्थ

छिपाकर अन्य अर्थ बताता रहा। अब इसका वास्तविक अर्थ सुन लीजिए।

सैकडो दोषो को उत्पन्न करने मे जो भूल जाल के समान है, जिसे पूर्वाचार्यो ने छोड़ दिया ऐसे अनर्थकारी अर्थ को तू ग्रहण करता है तो फिर निरर्थक तप करने से लाभ क्या ? यदि धन को ही ग्रहण करना है तो तप का कोई प्रयोजन नही है।

श्रावक प्रसन्न होकर वन्दना कर अपने घर की ओर चल दिया। आचार्य ने पश्चात्ताप करते हुए रत्नाकर पच्चीसी का निर्माण किया। जिसे पढकर सहृदयी पाठक आज भी गद्‌गद् हुए विना नही रहता।

●

६ ‖ पुले बाँध रहा हूं

पण्डित प्रवर मुनि श्री यशोविजयजी की गम्भीर विद्वत्ता को देखकर विज्ञो ने उनको न्यायविशारद की उपाधि से अलकृत किया।

एक समय उनका चातुर्मास किसी गाँव में था। प्रतिक्रमण का समय था, सारा उपाश्रय श्रावको से खचाखच भरा था। पूज्य श्री नयविजयजी प्रतिक्रमण करवा रहे थे। लोग आनन्द से प्रतिक्रमण सुन रहे थे।

सज्झाय कहने का समय आया। एक श्रावक ने कहा—हमें आज तो न्यायविशारद यशोविजय जी के मुँह से सज्झाय सुननी है।

दूसरे श्रावक ने पूर्व श्रावक के कथन का समर्थन किया।

पण्डित मुनि श्री यशोविजयजी सरल हृदय के थे। उन्होने कहा—भाइयो! आपका प्रेम अपूर्व है, मैं आपके

प्रेम को समझता हूं पर आपसे अत्यन्त नम्रता के साथ निवेदन करता हू कि मुझे कोई भी सज्झाय नही आती ।

उसी समय एक श्रावक ने गर्म होकर कहा—तो क्या आपने काशी मे बारह वर्ष रहकर घास ही काटा है ।

मुनि श्री ने उस समय कुछ भी उत्तर नही दिया ।

दूसरे दिन सायंकाल का समय हुआ । यशोविजयजी ने नयविजयजी से प्रार्थना की कि यदि आप श्री आदेश देवें तो सज्झाय मैं बोलूं ।

आदेश प्राप्त हो गया, यशोविजयजी ने सज्झाय प्रारम्भ की । सज्झाय कहने का ढग उनका निराला था । कठ अत्यन्त मधुर था । श्रोता मंत्र मुग्ध होकर सज्झाय सुनने लगे । प्रतिदिन से भी आज सज्झाय लम्बी थी ।

सज्झाय चल रही थी, बीच मे ही श्रावक बोल उठा—महाराज श्री सज्झाय कहाँ तक लम्बी करते रहोगे ?

मुनि श्री ने कहा—श्रावक जी ! बारह वर्ष तक जो घास काटा था, उसके इस समय पुले बाँध रहा हूँ । क्या इतने जल्दी पुले थोडे ही बाधे जा सकते है ।

श्रावक समझ गया । उसने मुनि श्री से क्षमा याचना की ।

१०

निस्पृह सन्त : आनन्दघन

अध्यात्मरस की मस्ती मे झूमते हुए महान् योगी आनन्दघनजी आबू की गुफा मे से बाहर निकले। बाहर जोधपुर की महारानी अपनी दासियो के साथ खडी हुई पलक पावडे बिछाकर उनके दर्शनो की प्रतीक्षा कर रही थी। महारानी ने आनन्दघनजी को नमस्कार किया, और प्रार्थना के स्वर में कहा—

गुरुदेव! आपकी अलौकिक महिमा सुनकर आयी हूँ। मैं बडी दु खी हूँ। राजा वर्षों से मेरी ओर देखता भी नही है, आप ऐसा वशीकरण मन्त्र लिखकर दीजिये, या मन्त्र का कोई धागा दीजिए, जिससे राजा मेरा वशवर्ती हो जाए। आपकी असीम कृपा को मैं कभी भी न भूलूगी।"

आनन्दघनजी रानी की प्रार्थना को सुनी अनसुनी कर आगे निकल गए। रानी की प्रार्थना का उनके मन पर कोई असर न हुआ।

रानी प्रतिदिन प्रार्थना करने लगी। जब भी आनन्द-घन गुफा से बाहर निकलते रानी और दासियाँ उनको घेर लेती। आनन्दघन ने देखा—यह तो साधना मे विघ्न उपस्थित हो गया है। उस विघ्न से अपना पिण्ड छुडाने के लिए उन्होने एक कागज की नन्ही सी पर्ची पर कुछ लिखकर रानी को दे दिया।

रानी ने वह पर्ची तावीज मे डाल दी और उसे अपने गले मे बाँध दिया। रानी जोधपुर पहुँची।

किसी कारण विशेष से राजा के विचारो मे परिवर्तन हो गया। राजा पूर्व रानी का मुह देखना भी पसन्द नही करता था, उसी रानी पर इतना मुग्ध हो गया कि वह रानी के संकेतो पर नाचने लगा।

रानी मन ही मन योगीराज पर प्रसन्न थी।

राजा मे यकायक परिवर्तन देखकर सभी रानियाँ ईर्ष्या से जलने लग गई। रानियो ने दासियो से पता लगाया कि योगीराज आनन्दघन ने ऐसा मन्त्र लिखकर दिया है जिसके कारण ही राजा रानी पर पागल है।

रानियो ने आनन्दघन को मन ही मन गालियाँ दी, और राजा को भी वह कारण बता दिया कि आप किस कारण से उस रानी पर इतने आसक्त है।

राजा को भी अपने मानसिक परिवर्तन पर आश्चर्य हो रहा था। उसको जानने की जिज्ञासा तीव्रतम हो उठी। रानी गहरी नीद मे सोई हुई थी, राजा ने उसके गले मे से वह ताविज निकाला, उसे तोडकर उसमे से छोटी सी कागज की पर्ची निकाली, जिसमे लिखा था--

राजा रानी दो, मिले या न मिले
इसमे आनन्दघन को क्या ?

राजा का मस्तक झुक गया, धन्य हो ऐसे निस्पृह सन्त को।

राजा सामन्तो के साथ आनन्दघन के दर्शन के लिए पहुचा। किसी ने आनन्दघन को सूचना दी कि जोधपुर नरेश आपके दर्शन के लिए आ रहा है। यह सुनते ही आनन्दघन कही से कोलसे ले आये और उसे पत्थर पर घिसकर अपने मुह पर लगाने लगे।

राजा ने पूछा–महाराज ! आपने अपना मुँह काला क्यो किया है ?

आनन्दघन—राजन् ! इतने समय तक मैं इस एकान्त स्थान मे अपनी साधना करता था, किसी को भी कुछ पता नही था, अब तुम मेरे पास आये हो, इस कारण तुम्हारे देखा देखी सैकडो व्यक्ति आयेगे और मेरी साधना

११ || आध्यात्मिक शक्ति

चारो ओर प्राकृतिक सौन्दर्य-सुषमा विखरी हुई थी। हरे-भरे वृक्ष लहलहा रहे थे। कलकल छलछल करते हुए झरने झर रहे थे। एकान्त शान्त स्थान में बैठ कर एक अलमस्त योगी के हृतंत्री के सुकुमार तार झनझना रहे थे—

ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम माहरो रे,
ओर न चाहुँ रे कन्त !

उस समय एक व्यक्ति ने आकर उस योगी के चरणो मे नमस्कार किया और एक बोतल का उपहार देते हुए कहा—आपका एक बालमित्र इब्राहीम था। आप जैन साधू बने और वह फकीर बना। बारह वर्षो तक उग्र साधना कर उन्होने यह सुवर्ण रस प्राप्त किया है। एक बूद डालने पर लोहा सोना बन जाता है। करोडो रुपयो से भी अधिक कीमत इस बोतल की है, जिस सुवर्ण को

प्राप्त करने के लिए संसार के लोग छटपटा रहे है वह अद्‌भुत वस्तु आपके मित्र ने आप पर अत्यधिक अनुराग होने से प्रेषित की है, आप इसे ग्रहण करे।

योगी आनन्दघन ने वह बोतल ली और एक पत्थर पर दे मारी, बोतल फूट गई और वह सुवर्ण रस धूल में मिल गया।

आनन्दघन की यह करतूत देखकर, बोतल लाने वाला व्यक्ति आपे से बाहर हो गया। बोला—अरे बेवकूफ! अरे नालायक! यह तूने क्या किया? कौआ रत्नो की कीमत क्या जाने? भीलनी मोतियो को क्या पहचाने? तूने कितना भयंकर नुकसान किया है।

आनन्दघन मुस्कराते हुए उसकी बाते सुनते रहे। जब वह शान्त हुआ तब आनन्दघन ने कहा—तुम तो इस छोटी-सी शीशी के फूट जाने पर बहुत ही परेशान हो गए। आध्यात्मिक साधना के सामने इस प्रकार की भौतिक पदार्थों की क्या कीमत है? मेरे मित्र ने भूल की है जो आध्यात्मिक सिद्धि को प्राप्त करने के बजाय भौतिक वैभव के लिए उसने अमूल्य साधना गुमा दी। तुम जिस सुवर्ण के लिए पागल बने हुए हो उसमे क्या रखा है।

उस व्यक्ति को प्रतिबोध देने के लिए आनदघन

उठे और एक काली-कलूटी पत्थर की शिला पर पेशाव किया, वह शिला उसी समय सोने की बन गई।

वह मुसलमान तो आँखे फाड कर देखता ही रह गया कि जिस योगी के मल-मूत्र मे भी सुवर्ण बनाने की शक्ति है, उसका क्या कहना!
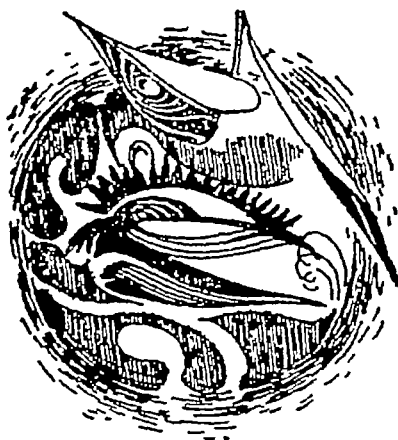
१२ || भक्ति निजी सम्पत्ति है

आनन्दघनजी परम भक्त थे। उनकी कविता शब्दो का जंजाल नही है अपितु अन्तर्हृदय से निकले हुए उद्‌गार है। उसमे भाषा नही, भाव की प्रधानता है।

वे एक बार भक्ति भावना से विभोर होकर तीर्थङ्कर प्रभु के गुणानुकीर्तन कर रहे थे। भक्ति की अधिकता से उनकी आँखो से आँसुओ की अविरल धारा छूट रही थी। मुँह से संगीत की स्वर लहरी फूट रही थी, एक के पश्चात् एक तीर्थङ्कर की स्तुति स्वत निर्मित होती चली जा रही थी। तेईस तीर्थङ्कर की स्तुति एक ही बैठक में एक ही साथ उन्होने बना ली। अकस्मात् उनकी दृष्टि अपने पीछे गई, एक व्यक्ति उनके पीछे बैठा उनकी कविता को लिखता हुआ चला जा रहा था। आनन्दघनजी को यह अच्छा न लगा। वे उठ गये, और वहाँ से चल दिये।

चौवीसवें तीर्थङ्कर का भजन वे उस समय नही बना सके ।

प्रभु भक्ति आनन्दघनजी की अपनी निजी सम्पत्ति थी। उसकी सार्वजनिक रिपोर्ट की उन्हे आवश्यकता नही थी। भक्ति कोई बाजारू पदार्थ नही है, वह तो अन्त-र्हृदय की पवित्रता है। जीवन मे जिसको हम सबसे अधिक पवित्र मानते हैं उसको अन्तर्हृदय में छिपाकर रखना चाहिए। लिखना, बोलना, पढना, चर्चा करना, सन्मान प्राप्त करना वही तक अच्छा लगता है जब तक प्रभु के साथ तन्मयता नही हो जाती।

१२ || धर्मगुरु
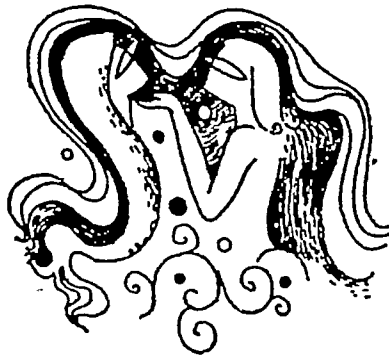
गुजरात का महामन्त्री सान्तू हाथी पर आसीन होकर घूमने के लिए जंगल मे जा रहा था। उसने किसी मकान में से एक यती को आते हुए देखा, जिसके साथ एक वेश्या थी। यती का हाथ वेश्या के कंधे पर था।

मन्त्री हाथी से नीचे उतरा, उत्तरासंग कर भक्ति-भावना से विभोर होकर पञ्चाङ्ग नमाकर प्रणाम किया। और अच्छी तरह उसे देखकर मन्त्री चल दिया।

महामन्त्री के प्रस्तुत सद्व्यवहार से यती लज्जा से जमीन में गड़ा जा रहा था, उसको अपने दुष्कृत्य पर मन मे अपार ग्लानि हो रही थी। उसकी ऑखे झुक गई थी। वह अपना अन्तर्निरीक्षण करने लगा कि साधु होकर मैं क्या कर रहा हूँ ? संयम की भावना पुन. उद्बुद्ध हो उठी। उसने उसी समय वेश्या का सग छोड दिया। आचार्य मलधारी हेमचन्द्र के पास जाकर आलोचना कर प्राय-

श्चित लिया। सयम लेकर शत्रुञ्जय की ओर प्रस्थित हुआ। बारह वर्ष तक उग्र तपस्या की।

एक समय मन्त्री सान्तू शत्रुञ्जय पर गया। उसने जब मुनि की घोर तपस्या देखी तो अवाक् हो गया। उसने मुनि को नमस्कार किया, पर मुनि को पहचान न सका। धीरे से विनयपूर्वक उसने पूछा—मुनिवर! आपके गुरु कौन है?

मुनि की आखो मे कृतज्ञता भर आयी। उन्होने कहा—मन्त्रीश्वर वस्तुत मेरे गुरु आप ही है। यदि उस दिन आपने स्नेह से मेरे मे साधुत्व का गौरव न जगाया होता तो आज मैं इस प्रकार न बन पाता। मेरी विवेक की आखे आपने खोली है। आपके सद्व्यवहार ने ही मुझे पुन. सयम ग्रहण की प्रेरणा दी इसलिए आप ही मेरे धर्म गुरू है।

—प्रबन्ध चिन्तामणि ४।१६२

१४ || अद्भुत क्षमा

कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र के प्रकाण्ड पाण्डित्य और प्रकृष्ट प्रतिभा से साक्षर और निरक्षर सभी प्रभावित थे। बडे-बडे विद्वान् जो अपने आपको सरस्वतीपुत्र मानते थे, जिन्होने शास्त्रार्थ में दिग्गज कहे जाने वाले विद्वानो को जीत लिया था, वे भी आचार्य हेमचन्द्र की विद्वत्ता से प्रभावित थे। कितने ही विद्वान् आचार्य से द्वेप भी करते थे और कभी-कभी उनकी ईर्ष्याग्नि वाणी के द्वारा प्रस्फुटित भी हो जाती थी।

पण्डित 'वामराशि' आचार्य से अत्यधिक ईर्ष्या करता था। एक वार उसने आचार्य को गजगति से राजसभा मे आते हुए देखा तो ईर्ष्या से वह जल उठा। वह आपे से बाहर हो गया, उसने आचार्य पर व्यंग कसते हुए एक श्लोक कहा—

"यूकालक्षशतावली वलवलल्लोलोल्ललत्कंबलो

दन्तानां मलमण्डलीपरिचयाद् दुर्गन्धरुद्धाननः ।
नासावंशनिरोधनाद् गिरा-गिरात्पाठप्रतिष्ठा रुचि·
सोऽय हेमड सेवड पिल- पिलत्खल्लि समागच्छति" ।

अर्थात् जिसके तन पर लटकते हुए कम्बल में करोड़ो यूकाए किलबिला रही है। दांतों की मलमण्डली की दुर्गन्धि से जिसका मुह भरा हुआ है, श्लेष्म से–जिसके नासा छिद्र रुक जाने से पाठ की प्रतिष्ठा गिनगिनाहट कर रही है, जिसके सिर की टाल पिलपिली हो रही है । वह 'हेमड' नामक सेवड(श्वेताम्बर श्रमण)देखिए चला आ रहा है।"

वामराशि के इस प्रकार अपमान पूर्ण वचन सुनकर भी आचार्य का मुख म्लान नही हुआ। आचार्य उसको निहार कर मुस्करा उठे। उसके सन्निकट आकर उन्होने उसके कन्धे को झकझोरते हुए कहा—

"पण्डित प्रवर ! क्या आपने इतना भी नही पढा कि विशेषण का प्रयोग विशेष्य से पूर्व करना चाहिए। देखिए,अब से हेमड-सेवड नही,किन्तु सेवड-हेमड कहना।"

पण्डित वामराशि का सिर लज्जा से झुक गया। आचार्य की अद्भुत क्षमा से वह पानी-पानी हो गया।

—प्रबन्ध चिन्तामणि ४।१६२

१५ || आत्म-वैभव

राजा दशार्णभद्र को यह सूचना मिली कि श्रमण भगवान् महावीर प्रभु प्रात काल विहार कर दशार्णपुर मे पधारेगे। यह सुनते ही राजा का तन मन नयन प्रमुदित हो उठा।

"मैं प्रात.काल भगवान् को नमस्कार करने के लिए जाऊंगा, पूर्व गया उस ढग से नही किन्तु नये ढंग से। भगवान् का शाही ठाठ से ऐसा स्वागत करूगा, जैसा आज तक किसी अन्य राजा ने नही किया।" रात भर राजा इसी उधेड बुन मे खोया रहा, वह नई-नई योजनाये सोचता रहा। उसे रात भर नीद ही नही आई।

उसने प्रात काल होने के पूर्व ही नगररक्षक को बुलाकर आदेश दिया कि नगर के प्रत्येक मार्ग को साफ किया जाय। कही पर भी गंदगी न रहे। सुगन्धित जल का छिडकाव कर पुष्पोद्यान की तरह नगर को महका दो,

नगर को इस प्रकार सजाओ मानो स्वर्ग हो। नगर रक्षक ने आदेश पाते ही नगर को सजाया-सवारा। स्थान-स्थान पर पुष्पमालाएं बाधी गई। मगलतोरण लटकाए गए। मणि-मुक्ताओ के द्वार बनाए गए कुछ ही क्षणो मे दशार्ण-पुर का कायाकल्प हो गया।

राजा दशार्णभद्र ने स्नान किया, सुगन्धित पदार्थ लगाए। बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहने। राजा का शरीर उन आभूषणो से चमकने लगा। वह सजाये हुए हाथी पर आसीन हुआ। रूपवती रानियाँ रथों पर आरूढ हुईं। उसके पीछे राजपुरोहित, राजमन्त्री, उनका परिवार, सेनापति, नगर के लब्धप्रतिष्ठित श्रेष्ठी, सार्थवाह और उनकी धर्मपत्निया, परिवार तथा हजारो नरनारी और उसके पश्चात् चतुरगिणी सेना। विविध प्रकार के वाद्य और सगीत की मधुर ध्वनियाँ झनझना रही थी। इस अपूर्व दर्शन यात्रा को देखकर चारो ओर जयजयकार के गगन भेदी नारे गूजने लगे। हाथी पर बैठे-बैठे ही उसने विशाल जन समुदाय की ओर दृष्टि डाली, विराट् ऐश्वर्य और भव्य प्रदर्शन को देखकर राजा दशार्णभद्र का सिर गर्व से उन्नत हो गया।

देवराज देवेन्द्र ने अपने अवधिज्ञान से देखा—भगवान्

महावीर के दर्शनो के लिए आज धरती पर वैभव अंगड़ाइया ले रहा है। अपूर्व भक्ति को देखकर देवराज के मन मे हर्ष की तरंगे तरंगित हो उठी किन्तु दूसरे ही क्षण उन्होने देखा कि "इस दर्शन यात्रा के मूल मे राजा का अहंकार भी पनप रहा है। अरे! भक्ति रूपी दूध में अहकार रूपी जहर मिल गया है जिससे भक्ति भी विकृत हो गई है।" राजा के अहंकार को नष्ट करने के लिए देवराज ने आकाश मे मणि-मुक्ताओ से सुशोभित एक जलमय विमान बनाया, जिसमे रक्तोत्पल, नीलोत्पल आदि विविध प्रकार के शतदल फूल खिल रहे थे। रंग-विरगे पक्षी चहचहा रहे थे। इस विमान में बैठकर देवराज पृथ्वी पर उतरे, फिर ऐरावत हाथी पर आरुढ होकर देव-देवियो के वृन्द के साथ वे आगे वढे। यक्ष, गंधर्व और किन्नर कुमारियो के मधुर नृत्य सगीत से चारो दिशाएँ मुखरित हो रही थी।

देवराज की महान् व अद्‌भुत समृद्धि के सामने दशार्णभद्र की ऋद्धि फीकी पड गई। दशार्णभद्र लज्जित हो गया, उसका अहकार एक ही झटके मे टूट गया। वह चिन्तन करने लगा कि "मैं भौतिक वैभव की दृष्टि से कभी भी इन्द्र की प्रतिस्पर्धा नही कर सकता। भौतिक वैभव

की दृष्टि से मैं उससे पराजित हो गया हूँ। किन्तु मैं सच्चा क्षत्रिय हू, मैंने पीछे हटना कभी भी नही सीखा है। उसकी विचारधारा अन्तर्मुखी हो गई। वह हाथी से नीचे उतर पडा, उसने सारे आभूषण नीचे उतार दिये राजमुकुट और राजमुद्राएं भी उसने एक तरफ रखदी। प्रभु के चरणारविन्दो में पहुँचकर उसने प्रार्थना की कि "भगवन् ! भौतिक वैभव की तुच्छता मैंने समझ ली है, मैं आत्मा का अनन्त वैभव प्राप्त करना चाहता हूं, इसलिए मुझे दीक्षित कीजिए। दशार्णभद्र राजा अब अपरिग्रही श्रमण बन गए।

देवराज दशार्णभद्र को प्रभु के सामने मुनि बने हुए देखकर ठगे से रह गये। आध्यात्मिक वैभव की दृष्टि से दशार्णभद्र की वे प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकते थे, उन्होने दशार्णभद्र मुनि के चरणो में श्रद्धा से गद्‌गद् होकर नमस्कार किया। "मुनिप्रवर ! आपका जीवन महान् है, आपने वह अनन्त आत्म वैभव लिया है जिसके सामने भौतिक वैभव तुच्छ है। आप अपने सकल्प मे जीत गये।"

१६ || चन्द्रगुप्त मौर्य

चन्द्रगुप्त भारत का एक तेजस्वी सम्राट् था। उसने अपनी वीरता के वल पर यूनानियो की पराधीनता से भारत को मुक्त किया था। उसके शौर्य की गौरव गाथाए आज भी इतिहास के पृष्ठो पर चमक रही है। उसका जन्म राज्य परिवार मे न होकर एक साधारण गृहस्थ के घर मे हुआ था। इधर-उधर खेलना और गाव की गाये चराना यही उसका कार्य था। बचपन मे ही उसमे अनेक शुभ लक्षण प्रगट हो गए थे।

वह खेल मे स्वय राजा का पार्ट अदा करता, किसी मित्र को मंत्री पद पर नियुक्त करता, किसी को कोतवाल वनाता और किसी को चोर। चोर को कठोर दण्ड देता और अच्छे कार्य करने वाले को पुरस्कार देता। यदि कोई आज्ञा की अवहेलना करता या जरा सी आनाकानी करता तो वह अधिकार की भाषा मे उससे कहता—

"यह राजा चन्द्रगुप्त की आज्ञा है, इसका पालन तुम्हे करना ही होगा।" भिक्षु वेष मे परिभ्रमण करते हुए चाणक्य ने देखा कि इस बालक मे आत्मविश्वास और महत्वाकाक्षा गजब की है। उसने परीक्षा के लिए सोचा। जहां पर चन्द्रगुप्त उच्च आसन पर बैठा था, वहाँ गया। उसने याचना के स्वर में कहा—"राजन्! क्या हमे भी कुछ दान प्राप्त होगा।"

बालक ने धीरता के साथ आदेश दिया—"वे सामने जो गाये चर रही है उसमे से जो भी तुम्हे पसन्द हो, उसे ले जा सकते हो।

चाणक्य ने मुस्कराते हुए कहा—"राजन् वे गाये गाव वालो की हैं वे मुझे किस प्रकार ले जाने देगे।"

चन्द्रगुप्त की क्रोध से भृकुटी तन गई, उसने कहा—"विप्रवर! क्या तुम्हे यह ज्ञात नही है 'वीर भोग्या वसुन्धरा' है। किसकी मा ने अजमा खाया है जो मेरे आदेश को हवा मे उडाए।

बालक चन्द्रगुप्त अपने साहस और दृढ संकल्प के कारण साधनहीन होने पर भी युवावस्था में सम्राट् बन गया।

इतिहासकारों का अभिमत है कि वह जैन था और श्रुतकेवली भद्रबाहु का अनुयायी और परमभक्त था। ●

१७

दानवीर जगडूशाह

दानवीर जगडूशाह का नाम किसने नही सुना है? युग और शताब्दियाँ व्यतीत हो जाने पर आज भी उनका नाम इतिहास के स्वर्ण पृष्ठो पर जगमगा रहा है।

एक समय पॉच वर्ष का भयकर दुष्काल पडा। उस समय लाखो पशु भूख के मारे छटपटाकर मर गये। हजारों मानव एक-एक अन्न के दाने के लिए तरसने लगे। हजारो-लाखो प्राणियो की दयनीय अवस्था देखकर जगडूशाह, जो एक सच्चा जैन श्रावक था उसका हृदय करुणा से द्रवित हो गया। उसने गॉव-गॉव मे एक सौ बारह दान शालाएँ खोल दी। उदारता के साथ बिना किसी भेद-भाव के दान दिया जाने लगा।

जगडूशाह ने देखा कितने ही व्यक्ति जो ऊँचे खानदान के है, परिस्थितिवश जिनकी आर्थिक स्थिति अत्यन्त विपम हो चुकी है किन्तु जो लज्जा के कारण मॉग नही सकते

है, उनके लिए दान मण्डप में ही एक पर्दा लगा दिया। पर्दे के अन्दर स्वय जगडूशाह बैठता। दान लेने वाला आकर बाहर से भीतर की ओर हाथ फैला देता। जगडूशाह माँगने वाले का हाथ देखते और उसकी स्थिति को समझकर चुपचाप उसके हाथ मे उसकी आवश्यकतानुसार रख देते। कौन क्या ले रहा है कोई भी नही जानता। दान की निर्मल गगा वह रही थी।

जगडूशाह स्वयं नहीं चाहते थे कि मेरी यशोगाथा चारो दिशाओ में गूंजे, पर उनके न चाहने पर भी उनकी कीर्ति चारो ओर फैल रही थी।

राजा वीसलदेव ने भी दुष्काल मे अपनी प्रजा की सहायता करने के लिए कितने ही स्थानो पर 'सत्र' खोले थे, किन्तु अन्न के अभाव मे उनको बन्द करना पडा। उन्होने सुना कि जगडूशाह जैसा दानी मिलना कठिन है। वह बिना मुँह देखे ही याचक की आश्वयकतानुसार दान देता है। वीसलदेव ने इस बात की परीक्षा करने के लिए एक भिखारी का रूप बनाया और जगडूशाह की शाला मे गया। पर्दे के पीछे खडे रहकर खिडकी मे से अन्दर हाथ फैलाया। जगडूशाह ने उसके हाथ की रेखाओ को देखकर उसके हाथ मे हीरे की बहुमूल्य अँगूठी रख दी।

हीरे की अंगूठी को देखकर वीसलदेव आश्चर्य चकित हो गया। उसने दूसरा हाथ फैलाया। जगडूशाह ने सोचा इसे विशेष आवश्यकता है। अत दूसरी अंगूठी भी उसके हाथ में रख दी। दोनो अंगूठी लेकर वीसलदेव राजमहलों में पहुँच गया। दूसरे दिन वीसलदेव ने जगडूशाह को बुलाया और कहा—सेठजी ! मैंने सुना है कि आप दान देते समय किसी का चेहरा नही देखते और किसी को कुछ नही पूछते हो ?"

"हाँ महाराज ! बात तो ठीक है, उसके लिए चेहरा देखने और पूछने की क्या आवश्यकता है। हाथ की बनावट, उसकी सुकुमारता, तथा हाथ की रेखाए अपने आप उसका परिचय दे देती है। और उसकी योग्यता आदि को देखकर आवश्यकतानुसार वस्तु दे देता हूँ।

बीसलदेव ने हाथ मे दोनो हीरे की अगूठियाँ लेकर कहा कि—आपने ये किसको और क्यो दी ?"

जगडूशाह—राजन् ! जिसके हाथ मे मैंने ये अंगूठिया दी, वह महान् व्यक्ति था। मैंने सोचा यह व्यक्ति किसी खास आपत्ति से ग्रस्त है इसीलिए इसने हाथ पसारा है, इसे एक बार ही इतना दे दिया जाय कि दुबारा इसे मांगना न पड़े और इसके कार्य की भी पूर्ति हो सके।

वीसलदेव अत्यधिक प्रसन्न हुआ। उसका सम्मान किया और हाथी के ओहदे पर बिठाकर ससन्मान घर तक पहुचाया।।

—उपदेश तरंगिणी-४२

१८ ‖ दानवीर खेमादेदराणी

जिस समय गुजरात का सुल्तान महमूद बेगडा था, उस समय की घटना है। चापसी मेहता चांपानेर के नगर सेठ थे। और सादुलखा चांपानेर का उमराव था। एक समय वे दोनो वार्तालाप करते हुए दरबार मे जा रहे थे। मार्ग में एक चारण मिला, उसने नगर सेठ की दिल खोलकर प्रशंसा की और अन्त मे कहा–"पहले शाह है और फिर बादशाह है।"

चारण के प्रस्तुत वाक्य सादुलखा को बहुत ही बुरे लगे। वह उस समय कुछ भी नहीं बोला, किन्तु बादशाह को जाकर नमक मिर्ची लगाकर सारी बात कही। बादशाह ने उसी समय चारण को बुलाकर पूछा–तू बनियाँ की इतनी प्रशंसा क्यो करता है ?

चारण–बादशाह प्रवर ! इनके पूर्वजो ने जो कमाल के कार्य किये है उन्हे कौन भूल सकता है।

बादशाह—'बादशाह' शब्द मे शाह शब्द बाद मे लगता है और बनियो के पहले शाह शब्द लगता है क्या यह उचित है ? क्या इस प्रकार लगाना बादशाह का अपमान नहीं है ?

चारण—बादशाह से भी अधिक शाह लोगो में शक्ति है और वे उस शक्ति से ससार का भला कर सकते है। क्या आपने सुना नही सम्वत् १३१५ मे भयकर दुष्काल पडा था। उस समय जगडूशाह ने स्थान-स्थान पर दान-शालाएँ खोल कर प्रजा को मरने से बचाया था।

बादशाह चारण की बात सुनकर चुप हो गए। भवितव्यता से दूसरे ही वर्ष महान् दुष्काल पड गया। बादशाह ने मन मे सोचा—चारण ने शाह की प्रशसा की है अब उनकी परीक्षा का समय आगया है। उसी समय बादशाह ने चारण को बुलाकर कहा—तूने शाह की प्रशंसा की थी, अब अपनी बात सिद्ध कर ! नही तो तुझे दण्ड दिया जायगा।

चारण उसी समय चाम्पाजी नगर सेठ के पास गया और बोला—सेठजी ! अब आप लोगो की परीक्षा का समय आ गया है अत तैयार हो जाइये। मुझे बादशाह मौत के घाट उतार देगा, साथ ही आपकी शाह पदवी भी छीन लेगा।

सेठ ने सारी वस्तुस्थिति समझ कर कहा—चारणजी! आप घबराइए नहीं, बादशाह से एक मास की मुद्दत मांग लेवे। हम इस अवधि मे सारी व्यवस्था कर देगे।

चापसी मेहता जो उस समय नगर सेठ थे उन्होने उसी समय सभी सेठियो को एकत्रित किया और बादशाह की बात उ नके सामने रखी। सभी सेठ लोगो ने आश्वासन दिया। किसी ने एक दिन का खर्च, किसी ने दो दिन का खर्च और किसी ने दस या पन्द्रह दिन का खर्च लिखाया। इस प्रकार चार महीने की सारी मितियाँ लिख दी गईं। किन्तु अभी आठ महीने अवशेष थे, इसलिए उन दिनो की पूर्ति करने के लिए बाहर गाव जाने की आवश्यकता हुई। नगर सेठ और कुछ प्रतिष्ठित सज्जन वहाँ से पाटण गये। वहाँ के सेठियो ने दो महिने की तिथियाँ लिख दी। वहाँ से वे धोलके गये। वहाँ पर दस मितियाँ लिखी गई। इस प्रकार १६० दिन लिख लिए गये, पर इस कार्य को करने में उनको वीस दिन का समय लग गया। महिने मे दस ही दिन शेप थे, अभी तक तो आधा ही कार्य हुआ था, अत चांपसी मेहता को चिन्ता होना स्वाभाविक था। वे धोलका से धधुका जाने के लिए प्रस्थित हुए। मार्ग में एक छोटा सा गाँव आया।

जिसका नाम हडाला था। जहाँ पर खेमादेदराणी रहता था, जो अपनी भैंसो को पानी पिलाने के लिए कुए पर जा रहा था। साधारण वेश-भूषा थी। उसने जाते हुए सेठो को देखकर कहा—मेरी एक प्रार्थना है। सेठों ने समझा यह कोई गरीब व्यक्ति है, भीख माँगना चाहता है। सेठो ने कहा जो भी काम हो जल्दी कहदो, हमारे को समय बहुत कम है।

खेमादेदराणी—भोजन का समय है, आप सभी मेरे यहाँ पर भोजन करने पधारे। मै बिना भोजन किये आपको जाने नही दूँगा। सेठ लोगो ने टालने का बहुत ही प्रयास किया किन्तु अन्त मे उसके आग्रह को मानना पडा। वे सभी लोग भोजन करने के लिए उनके वहाँ पर पहुचे। खेमादेदराणी ने उनको बैठने के लिए पलँग बिछा दिया। उसकी धर्म-पत्नी ने शीघ्र ही सुन्दर भोजन बना दिया।

भोजन के पश्चात् खेमादेदराणी ने पूछा—यदि बात गोपनीय न हो तो कृपया बतावे कि आप बडे नगर के रहने वाले है, ऐसा कौन कार्य है जिसके लिए आप धंधुका पधार रहे हैं?

नगर सेठ ने आदि से अन्त तक सारी बात बताई। और कहा कि इस महान् कार्य मे आप भी अपना कुछ

सहयोग देना चाहे तो दे सकते है।

खेमादेदराणी सरल स्वभावी था, और पूर्ण पितृभक्त था, उसने कहा जरा आप ठहरिए मैं अपने पिता श्री को पूछकर इसका उत्तर देता हूँ।

खेमा के पिताजी वृद्ध अवस्था के कारण कमरे मे सोये हुए थे। उसने जाकर सारी बात कही।

पिता ने कहा—खेमा! ऐसा अवसर पुनः पुनः आने वाला नही है। शाह की लाज रखनी है। अपने पास धन की कहाँ कमी है। हम लोग गाँव में बैठे है, शहर के निवासियो को तो हर समय लाभ मिलता है, पर हमारे को कहाँ लाभ मिलता है, इसलिए तू इस सुनहरे अवसर को न चूक। बारह महीने लिखदे।

खेमादेदराणी तो पहले से ही चाहता था। उसने सेठो को आकर निवेदन किया कि आप सभी लोग समय-समय पर लाभ लेते ही है, पर यह लाभ मुझे दीजिए।

सेठ लोगो ने विचार किया कही यह पागल तो नही हो गया है। चाम्पानेर के सभी सेठो ने मिलकर चार महिने लिए है। पाटणवालो ने दो महीने लिए है और यह अकेला बारह महिने लेने को कहता है।

नगर सेठ ने कहा—खेमाजी! जहाँ पर लक्षाधिपति

और करोडपति रहते है वे भी बारह महीने का खर्चा नही दे सके पर आप देने का कहते है, यह बच्चो का खेल नही है, आप अपनी शक्ति की जांच कीजिए, आप एकाध तिथि लिखाना चाहते है तो लिखा दीजिए।

खेमादेदराणी ने सोचा--इनको मेरी वेषभूषा, और मकान का बाह्य आकार-प्रकार देखकर शका हो गई है। इसलिए उसने उनकी शका का निवारण करने के लिए कहा—कृपया आप मकान के अन्दर पधारिए। अन्दर ले आकर ज्यो ही उसने धन का भण्डार खोला। सेठों ने देखा बहुमूल्य हीरे, पन्ने, माणिक मोती आदि जवाहरात के अम्बार लगे है। सोना और चाँदी के ढेर पडे है। सेठियो की तो आँखे ही चकरा गई। अरे, हम इसे गरीब समझ रहे थे, पर इसके पास तो अरबो की सम्पत्ति है। नगर सेठ ने कहा—अब हमे विश्वास हो गया है कि आप बारह महीने तो क्या बारह वर्ष की भी तिथियाँ लिख सकते है। हम आपको न समझ सके इसीलिए आपको इतना कष्ट दिया। आपने हमे चिन्तामुक्त किया है इसलिए हम आपके आभारी है! ससम्मान खेमादेदराणी को सेठ लोग चापानेर ले गये। तीसरे दिन चारण को लेकर वे बादशाह के दरबार मे उपस्थित हुए।

बादशाह—आप लोगो को पच्चीस दिन हो गए है, केवल पाँच दिन शेप है। क्या अपने शाह पद की इज्जत रख सकोगे?

नगर सेठ—जहाँपनाह! हमारी इज्जत तो सदा बनी हुई है। हमारे यहाँ पर ऐसे भाग्यशाली बैठे है कि एक वर्ष का सम्पूर्ण खर्चा एक ही व्यक्ति देने को प्रस्तुत है, बताइए अब आप क्या चाहते हैं?

बादशाह सुनकर आश्चर्य चकित हो गया। खेमा-देदराणी से बादशाह ने पूछा—बताओ! तुम्हारे कितने गाँव है?

खेमा—एक पली और एक पायली। अर्थात् पली से तेल बेचा जाता है और पायली से अन्न खरीदा जाता है। यही मेरी जागीरी है। जैनधर्म के प्रभाव से मैं सुखी हूँ।

बादशाह ने कहा—वस्तुत चारण का कथन सत्य है।

खेमादेदराणी ने विक्रम सम्वत् १५३९ मे एक वर्ष तक अन्न आदि देकर गुजरात की जनता को दुष्काल के संकट से बचाया। आज भी उनकी यशोगाथा इतिहास के स्वर्ण पृष्ठो पर ही नही जन-जन की जिह्वा पर भी चमक रही है।

●

१६ || महामन्त्री शकडाल

जिस समय पाटलीपुत्र के सिंहासन पर नौवें नन्द का राज्य था, उस समय उनका महामात्य कल्पकवंशीय 'शकडाल' था, उनका अपर नाम 'श्री वत्स' था। शकडाल के स्थूलिभद्र और श्रियक ये दो पुत्र थे। स्थूलिभद्र बाल्य-काल से ही ससार से विरक्त और उदासीन थे। वे जवानी मे भी योगी की तरह मौनी बनकर आत्म चिन्तन में लीन रहते थे। न उन्हे इधर-उधर आना-जाना पसन्द था और न इधर-उधर किसी से दो बात करना ही। सन्त के लिए वैराग्य भूषण है, पर गृहस्थाश्रम मे रहने वाले उसे दूषण मान लेते है। स्थूलिभद्र का त्याग वैराग्य पूर्ण व्यवहार महामात्य शकडाल के लिए सिरदर्द बन गया। वह चिन्तन करने लगा कि जब तक स्थूलिभद्र के जीवन में स्फूर्ति का संचार न हो, सासारिक कार्यों मे दक्षता प्राप्त न हो, व्यवहार पटुता न आये तब तक वह महामात्य के

गौरवमय पद को किस प्रकार निभा सकेगा ? उसने स्थूलिभद्र को सामाजिक कलाओं में निपुण और सुदक्ष बनाने के लिए मगध की महान् सुन्दरी, नृत्यकला विशारदा कोशा के पास उसे भेजा।

पाटलीपुत्र में उस समय वररुचि नामक एक अन्य विद्वान् रहता था। उस पर सरस्वती की तो कृपा थी, पर वह अहंकारी और दंभी था। राजा नन्द के सामने प्रतिदिन नूतन एक सौ आठ श्लोक सुनाता था। राजा उसकी प्रबल प्रतिभा को देखकर चकित था, पर महामात्य शकडाल की अनिच्छा से वह प्रतिदान में उसे कुछ भी नहीं दे सकता था।

वररुचि समझ गया कि महामात्य की उदासीनता ही मेरे पुरस्कार में बाधा उत्पन्न कर रही है। एक दिन वह महामात्य के घर पहुँचा। और उसने अपनी विद्वत्ता की छाप महामात्य की पत्नी पर डाली। पुरुष की अपेक्षा नारी अधिक भावुक व संवेदनशील होती है। उसने अपनी करुण-कथा सुनाते हुए कहा—यदि महामात्य जरा से भी प्रसन्न हो जायेंगे तो राजा इतना धन बरसायेगा कि मेरी दरिद्रता नष्ट हो जायेगी। और मैं सदा के लिए सुखी हो जाऊंगा।

मन्त्री की भावुक पत्नी ने उसे आश्वस्त किया कि वह किसी भी प्रकार महामात्य को प्रसन्न करेगी और राजा के सामने वे तुम्हारी प्रशसा मे दो शब्द कहेगे।

वररुचि अपना पासा सीधा पडता देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने मुक्त कठ से महामात्य की पत्नी की प्रशसा की।

अब प्रतिदिन महामन्त्री की पत्नी वररुचि की विद्वता की, आशुकविता की प्रशंसा करती और कहती आप उनके प्रति इतने उदासीन क्यो है? आपको तो गुण-ग्राहक होना चाहिए।

महामन्त्री पत्नी की भोली बाते सुनकर मुस्करा देता। पर एक दिन अत्यधिक आग्रह करने पर उसने कहा—प्रिये! तुम जानती हो कि वररुचि विद्वान् अवश्य है, पर उसम मिथ्या अहंकार है और मायावी है। ये दुर्गुण फूल के साथ काटे की तरह है। वह अपनी विद्वता से लोगों को गुमराह करता है। मिथ्याचार के फैलने के भय से मैं उसे प्रोत्साहन नही देता हूँ।

यदि वह दंभी और मायावी है तो उससे आपको क्या लेना देना। आप यदि प्रशंसा मे दो शब्द ही कह देगे तो उसका भला हो जायेगा। आपको दया से उत्प्रेरित होकर

भी उसकी प्रशसा करनी चाहिए।

पत्नी के द्वारा अनेक बार प्रेरणा देने पर महामात्य शकडाल पिघल गये। उन्होंने दूसरे दिन राजसभा में वररुचि के श्लोक पढने पर मन्द हास्य के साथ छोटा सा शब्द कहा 'सुन्दर है'। महामात्य का इतना-सा शब्द निकलते ही राजा नन्द ने एक सौ आठ श्लोको के बदले मे एक सौ आठ स्वर्ण मुद्राए पुरस्कार मे दे डाली। वररुचि बाग-बाग हो उठा। अब वह प्रतिदिन एक सौ आठ श्लोक सुनाता और उसके बदले मे उतनी ही स्वर्ण मुद्राएँ प्राप्त करता। कुछ ही दिनो में सरस्वती और लक्ष्मी का मेल बैठ जाने से उसका अहकार दीप्त हो उठा। 'करेला और नीम चढ़ा' की कहावत चरितार्थ होने लगी। वह जनता-जनार्दन के बीच मे मिथ्या प्रचार करने लगा।

महामन्त्री शकडाल ने सोचा--प्रतिदिन एक सौ आठ स्वर्ण मुद्राएं दी जा रही है यह तो प्रत्यक्ष मे ही राजकोष का दुरुपयोग हो रहा है। एक दिन एकान्त मे राजा नन्द से कहा—महाराज ! वररुचि को निरर्थक ही राजकोप क्यो लुटा रहे है ?

राजा—मंत्रीवर ! आपने यह कैसे कहा ! वह प्रति-

दिन नये एक सौ आठ श्लोक बनाकर लाता है, क्या यह कम आश्चर्य है। विद्वान् का सम्मान करना हमारा राज-धर्म है।

महामन्त्री—राजन् ! वह हमारी आखो में धूल झोंकने का प्रयास करता है। वह साहित्य का चोर है। पुराने श्लोक रटकर आता है और उसे नवीन कहकर सुना देता है।

राजा—मत्रीवर ! आपने यह किस प्रकार जाना कि वह पुराने श्लोक सुनाता है।

मंत्री—राजन् ! वह जो श्लोक सुनाता है वह तो मेरी सातो पुत्रियो को पहले से ही कंठस्थ है, आप यदि चाहे तो उसकी कल ही परीक्षा ले लेवें।

राजा ने उत्सुकता से कहा—अवश्य ही।

दूसरे दिन राज सभा मे यवनिका डाल दी गई। उसके भीतर महामन्त्री की यक्षा, यक्षदत्ता आदि सातो पुत्रिया आकर बैठ गईं। वररुचि ने आकर प्रतिदिन की तरह गम्भीर स्वर मे एक सौ आठ श्लोक सुनाये।

महामत्री ने पूछा—कहिए वररुचि जी ! ये श्लोक जो आपने सुनाये है वे किसकी रचना है, किसने बनाये हैं ?

अपनी आशु प्रतिभा का परिहास होते हुए देखकर

वररुचि तिलमिला उठा—मन्त्री प्रवर ! क्या आपको अभी तक पता नही लगा कि ये श्लोक किसके है। मैं जो भी श्लोक बोलता हूँ वे दूसरे के बनाये हुए नही हैं, किन्तु वे मेरे स्वय के बनाए हुए है। मैं इसी समय यहाँ पर ही बनाता हूँ।

महामात्य—यह कथन मिथ्या है। सफेद झूठ है। तुमने जो आज श्लोक सुनाये है वे किसी प्राचीन कवि के वनाए हुए है।

वररुचि—यह असत्य है। बिल्कुल असत्य है। आप जरा प्रमाण दीजिए। केवल मुह से कह देने से कोई बात नही मानी जा सकती।

महामात्य—प्रमाण प्रस्तुत है। यक्षा आदि मेरी सातो कन्याओं को ये श्लोक कण्ठस्थ है। वे अभी तुम्हारे सामने प्रस्तुत कर सकती है।

सभा में सन्नाटा छा गया। राजा मौन था। महामात्य के आदेश को प्राप्त कर कुमारी यक्षा मच पर आई। महामात्य ने पूछा—"क्यो पुत्री ! पण्डित वररुचि ने जो श्लोक अभी सुनाए है क्या वे तुम्हे याद है ?"

हा पिताजी !

तो सुनाओ बेटी।

आदेश प्राप्त होते ही यक्षा ने वररुचि के कहे हुए एक सौ आठ श्लोक ज्यो के त्यो सुना दिए।

वररुचि के हाथ पाव शिथिल हो गए, मस्तक शून्य हो गया। आखे निस्तेज हो गई। चेहरा सफेद हो गया। उसे समझ ही नही आ रहा था कि यह क्या हो गया।

महामत्री शकडाल ने वररुचि को देखा, और बोले— वररुचि! ये श्लोक सातो पुत्रियो को याद है, चाहो तो सुना सकती है।

वररुचि ने होठ काटते हुए कहा—हाँ, तो सुनवाइए।

उसके पश्चात् यक्षदत्ता मच पर आई, उसने भी उसी तरह श्लोक सुना दिये। क्रमश सातो कन्याओ ने श्लोको को सुनाकर सभा को स्तब्ध कर दिया।

सारी सभा वररुचि का तिरस्कार करने लगी। राजा ने उसकी भर्त्सना की। वररुचि मुह लटकाये अपने घर की ओर चल दिया। अपमान से उसका खून खौल उठा। अनेक प्रयत्न करने पर भी उसे महामत्री की चालाकी समझ मे न आ सकी।

वस्तुस्थिति यह थी कि महामंत्री शकडाल की सातों पुत्रियो की स्मृति इतनी विलक्षण थी कि पहली कन्या को एक बार सुनते ही कठिन से कठिन पद्य भी स्मरण

हो जाता था। दूसरी को दो वार सुनने पर याद हो जाता था, तीसरी को तीन बार सुनने पर याद हो जाता था, इस प्रकार क्रमश मातवी को सात वार मे याद हो जाता था। उनका मस्तिष्क एक कैमरे के समान था, जिसमे पूरा का पूरा शब्द चित्र अकित हो जाता था, किन्तु इस रहस्य का पता किसी को न चला।

वररुचि दंभी था। उसने नया दम्भ फैलाना प्रारम्भ किया। प्रात.काल वह गंगा नदी पर जाता और एक सौ आठ श्लोक बोलकर गंगा की स्तुति करता, पैरो को पानी मे डाल कर नमस्कार करने के लिए नीचे झुकता है कि एक सौ आठ स्वर्ण-मुद्राए पानी मे से उछल कर बाहर आ जाती।

जनता ने जब यह अद्‌भुत चमत्कार देखा तो वह विस्मित हो गई। सैकडो व्यक्ति उस दृश्य को देखने के लिए प्रतिदिन उपस्थित होने लगे। वररुचि कहता–राजा भले ही मेरी कविता का सम्मान न करे, पर मेरी कविता पर स्वयं गगा माता प्रसन्न है।

महामंत्री शकडाल ने जब यह अनोखी चर्चा सुनी तो अपने गुप्तचरो से उसने पता लगाया कि—वररुचि स्वयं रात्रि मे गंगा के किनारे पानी मे स्वर्ण मुद्राओ को एक

यंत्र मे रख देता है। यन्त्र इस प्रकार बनाया गया है उसे पैरो से दवाते ही वह स्वर्ण मुद्राएं उगल देता है। गुप्तचरो ने वररुचि के मुद्राएं डालने के पश्चात् पुन निकाल ली और वे मुद्राएं मन्त्री को लाकर दे दी।

दूसरे दिन राजा मन्त्री के साथ वररुचि का चमत्कार देखने के लिए गगा के तट पर आया। मन्त्री और राजा को देखकर वररुचि बाँसो उछलने लगा। मत्री और राजा को छलने लगा। श्लोक पाठ पूर्ण होने पर वररुचि ने प्रतिदिन की तरह पैर से यंत्र को दवाया। यन्त्र मे से केवल चर-चर की ध्वनि हुई, किन्तु स्वर्ण मुद्राएँ नही निकली। उसका चेहरा सफेद हो गया। वह समझ नही सका कि वह क्या हो गया !

महामन्त्री शकडाल आगे बढा, पण्डितजी को जरा-सा नमस्कार कर पूछा—क्यो पण्डितजी ! क्या अशर्फियाँ डालना भूल गये। या किसी ने चुराली है ?

वररुचि समझ गया कि महामन्त्री को मेरी काली करतूत का पता लग गया है।

महामन्त्री ने गम्भीर हँसी हंसते हुए कहा—पण्डित जी ! चिन्ता न करे, यदि गंगा प्रसन्न न हुई हो तो कोई बात नही। महाराजा नन्द आप पर प्रसन्न है और वह

थैली आपको दे रहे है, लीजिए। यह वही थैली है जो कल रात को आपने यन्त्र मे डाली थी।

सारी भीड़ मे सन्नाटा छा गया। वररुचि जमीन में गढा जा रहा था। उसे चक्कर आने लगे।

महामन्त्री ने अनुचरो को आदेश देकर गंगा मे छिपाए हुए गुप्त यन्त्र को वहार निकलवाया। राजा और प्रजा के सामने वररुचि की पाखण्ड लीला प्रकट हो गई। सभी की जबान पर एक ही स्वर झनझना ने लगा—यह जितना बडा विद्वान है उतना ही बड़ा धूर्त है।

वररुचि के अन्तर्मानस में प्रतिशोध की भयङ्कर आग सुलग उठी। उसने शकडाल को जी-जान से ही खत्म करना चाहा। उसके लिए उसने अनेक षडयन्त्र रचे किन्तु सफल न हो सका, अन्त मे उसने एक दासी के साथ साठ-गॉठ की। दासी के द्वारा शकडाल के घर की सभी बातो की जानकारी वररुचि प्राप्त करने लगा। वररुचि ने अन्य कार्य छोड़कर बालको को अध्ययन करवाने का कार्य प्रारम्भ किया। एक दिन दासी ने वररुचि को बताया कि इन दिनो में शकडाल के घर मे खूब प्रसन्नता का वातावरण है। महामन्त्री के पुत्र श्रियक के विवाह की तैयारियॉ चल रही है। विवाह में मगध शासन के सभी व्यक्ति-

सम्राट् से लेकर कर्मचारी तक उपस्थित होंगे। उनको समर्पित करने के लिए नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र, छत्र, आभूषण आदि बनाये जा रहे है।

वररुचि ने देखा इससे अधिक सुन्दर अवसर नही आ सकता। उसने प्रस्तुत घटना को विकृत कर जनता मे भ्रम फैलाना प्रारम्भ किया—

नन्दराय नवि जाणई,
जे शकडाल करेसि।
नन्दराय मारिउ करी,
सिरिय उ राज ठवेसि॥

नन्दराजा शकडाल पर विश्वास कर बैठा है, उसे कुछ भी ज्ञात नही है कि शकडाल क्या करने वाला है ? किन्तु यह राजा नन्द की हत्या करके अपने पुत्र श्रियक को सिहासन पर बिठलायेगा।

वररुचि ने यह पद्य बच्चो को सिखलाया, और मिठाई आदि का प्रलोभन देकर नगर की गली-गली और घर-घर मे इसे प्रसारित कर दिया। स्थान-स्थान पर यह गाथा सुनाई दे रही थी। यत्र-तत्र-सर्वत्र शकडाल के राजद्रोह की चर्चाएँ होने लगी। शकडाल के विरोधी व्यक्ति इसका खूब प्रसार करने लगे। विरोधी व्यक्तियो ने समय देखकर

राजा से कहा—"राजन् ! शकडाल के घर मे राज विद्रोह की जोर-शोर मे तैयारियाँ हो रही है। नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र और आयुध बनाये जा रहे है।'

अपने गुप्तचरो को भेजकर राजा ने पता लगाया तो जो विरोधियों ने कहा था वह सत्य ज्ञात हुआ। दृष्टि बदलने पर सृष्टि भी बदल जाती है। श्रियक के विवाह की तैयारियाँ राज विद्रोह की तैयारियाँ समझली गईं। महामात्य शकडाल के प्रति राजा के मन में भयङ्कर रोष और घृणा की भावना उत्पन्न होगई।

महामात्य प्रतिदिन की तरह राजसभा मे गये, पर राजा की आँखो मे क्रोध की चिनगारियाँ उछल रही थी। राजा का चेहरा एकदम परिवर्तित हो चुका था। महामात्य कुछ क्षणो तक राजसभा मे रुके और राजा को नमस्कार कर शीघ्र ही लौट गये।

विलक्षण प्रतिभा के धनी शकडाल को सारी स्थिति समझने मे कुछ भी देर न लगी। राजा मिथ्या वहम का शिकार हो गया है और वह कही सारे परिवार को ही मौत के घाट न उतार दे, वह इस वात पर सोचने लगा।

राजा ने उसी समय श्रियक को बुलाया। श्रियक ने नमस्कार किया, पर पिता के चेहरे पर गहरी चिन्ता

छाई हुई थी। ठुड्डी पर हाथ रखकर वे किसी महान् समस्या को सुलझाने मे लगे हुए थे। श्रियक को सन्निकट बुलाकर कहा—राजनीति बडी विचित्र है। उसका चक्र घूमता रहता है, जिस घर मे तुम्हारे विवाह की मगलमय तैयारियाँ हो रही है उसे राजविद्रोह का अड्डा मान लिया गया है। राजा और अन्य कर्मचारी मेरे शत्रु बन गए है। मुझे राजद्रोही माना गया है, यह ज्ञात नही है कि किस समय सम्पूर्ण परिवार को मौत के घाट उतरना पडे कहते-कहते महामन्त्री की आंखे गीली हो गईं।

श्रियक महाराजा नन्द का मुख्य अंगरक्षक था। उसके कानो मे भी पूर्व यह बात टकराई थी, पर मिथ्या समझ कर वह उसे टालता रहा था। वह समझ रहा था कि नन्दवशीय राजा अपने मन्त्रियो को कभी भी राज विद्रोही नही समझ सकते, परन्तु उसकी धारणा मिथ्या हो गई।

शकडाल ने अपने मन को मजबूत बनाकर पुन कहा—श्रियक! इस महान् आरोप का प्रतिकार तुझे करना होगा। अब समय आ गया है, राजा को विश्वास दिलाने के लिए अपनी निर्मल राजभक्ति का प्रमाण प्रस्तुत करना होगा।

स्नेह प्रदर्शित करते हुए कहा–भाई, तुम क्यो चिन्तित हो, मेरे घर चलो, भोजन करो, और आनन्द से रहो, क्या वहन के घर आने मे भाई को संकोच हो सकता है ?

ऊदा–बहन ! मैं अकेला नही हूँ मेरे साथ बालबच्चे भी है ! उन्हे कहाँ ठहराऊँ ?

लाछी ने स्नेह सुधा वर्षाते हुए कहा–भाई ! तुम बिल्कुल चिन्ता न करो । मेरे घर के पास ही मेरा दूसरा मकान खाली पडा है तुम अपने परिवार के साथ वहॉ रहो । धीरे-धीरे अन्य सारी व्यवस्था हो जायेगी । भाभीजी भतीजे, भतीजियॉ साथ है तो उससे बढकर अन्य प्रसन्नता की क्या वात होगी ।

एक अपरिचित व्यक्ति के प्रति लाछी बहिन का नि:स्वार्थ प्रेम देखकर 'ऊदा' सोचने लगा—धन्य है यह पवित्रभूमि जिस भूमि के कण-कण मे स्नेह की सरस भावनाएं अंगडाइयॉ ले रही हैं । 'ऊदा' ने वहॉ पर रहकर प्रामाणिकता के साथ घी का व्यापार प्रारंभ किया । भाग्य ने साथ दिया, व्यापार चमक उठा, जब उसके पास कुछ संपत्ति एकत्रित हो गई तब उसने पुराने मकान को तुड़वाकर नया मकान बनाना चाहा । उसने उसके लिए लाछी बहिन से अनुमति मागी । लाछी वहिन ने कहा—

भाई ! अब इस मकान पर मेरा अधिकार नहीं है, यह तो मकान मैं तुम्हारे को कभी का दे चुकी हूँ इसलिए अब तुम जैसा चाहो वैसा इसे बना सकते हो, मुझे हार्दिक आह्लाद है कि तुम इस योग्य बन गये।

जब मकान की नींव खुदने लगी तब उसमें से एक स्वर्ण मुद्राओं से भरा हुआ स्वर्ण कलश निकला। ऊदा ने विचार किया इस स्वर्ण कलश पर मेरा कतई अधिकार नहीं है। उसने लाछी बहिन को बुलाकर कहा—यह अपना स्वर्ण कलश आप सभालिये। इस पर आपका ही अधिकार है। लाछी बहिन निस्पृह थी। उसने कहा—जब मैंने तुम्हारे को मकान दे दिया। मकान तुम्हारा है तो इसमें से निकला हुआ धन मेरा कैसे हो सकता है। इस धन पर मेरा कोई अधिकार नहीं है, यह तुम्हारे भाग्य का है, तुम ही इसे संभालो।

ऊदा के अत्यधिक आग्रह करने पर भी लाछी बहिन टस-से-मस नहीं हुई।

प्रत्युत्पन्नमति व प्रामाणिकता के कारण 'ऊदा' की प्रतिष्ठा दिन प्रतिदिन बढती रही। गुजरात के इतिहास वेत्ताओ का अभिमत है कि वही ऊदा आगे चलकर गुजरात का महामन्त्री बना, और उदयन के नाम से

विश्व विश्रुत हुआ।' महामन्त्री उदयन का काल गुजरात के इतिहास मे स्वर्णयुग के नाम से प्रसिद्ध है। महामन्त्री उदयन की प्रगति का मूल श्रेय लाछो बहिन के निःस्वार्थ भ्रातृ प्रेम को है। जब तक उदयन का नाम इतिहास के पृष्ठो पर चमकता रहेगा तब तक लाछो बहिन की कीर्ति पताका भी लहराती रहेगी।

—प्रबन्ध चिन्तामणी ३।६२। पृ. ६७
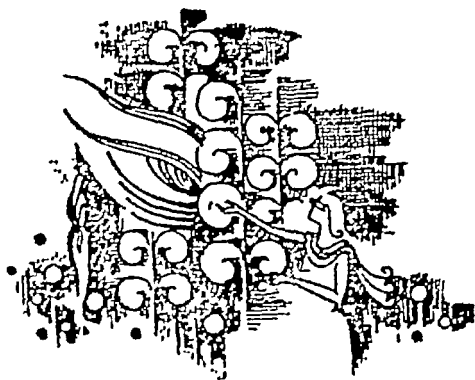
२४ आशाशाह की वीर माता

इतिहासकारों को आशाशाह की वीर माता का नाम पता नही है और न उसका पूर्णरूप से इतिहास ही मिलता है तथापि उनके जीवन की एक ऐसी तेजस्वी घटना है जिसमे उसकी वीरता, धीरता और गम्भीरता का पता लगता है। उसने महाराणा प्रताप के पिता उदयसिह की रक्षा की थी।

राणा संग्रामसिह के स्वर्गवासी होने पर उनके पुत्र रत्नसिह मेवाड के सिहासन पर आरूढ हुए और उसके पश्चात् विक्रमाजित् मेवाड के अधीश्वर हुए। किन्तु विक्रमाजित् अयोग्य था एतदर्थ मेवाड के हितचिन्तक सरदारो ने बालक उदयसिह के बालिग होने तक दासीपुत्र बनवीर को चित्तौड के सिहासन पर आसीन किया। परन्तु वनवीर को भी राज्य सिहासन का नशा चढ गया, और इतना गहरा चढ़ गया कि वह स्वयं किस प्रकार

दीर्घकाल तक राज्य कर सके, यह सोचने लगा। उसे उदयसिंह अपना प्रतिद्वन्दी लगा।

रात्रि का समय हुआ। उदयसिंह भोजन कर सो गया। धाय पन्ना उसके बिस्तर के पास बैठी थी, उसी समय राज महलो में से रोने की भयकर आवाज आई। धाय पन्ना के कान खडे हो गए कि यह आर्तनाद कहाँ से आरहा है ? उसी समय राजकुमार के जूठन को उठाने के लिए नाई आया। वह थर्-थर् कॉप रहा था, उसने दबी जबान से बताया कि राणा विक्रमाजित को बनवीर ने मार दिया है।

धाय पन्ना को समझने मे देर न लगी कि दुष्ट बनवीर की क्या योजना है। उदयसिह को उठाया, जिसकी उम्र पन्द्रह वर्ष की थी, युक्ति विशेष से महल के बाहर निकाल दिया, उसके स्थान पर उसी अवस्था का जो अपना पुत्र था उसे सुला दिया।

रक्त-लोलुपी, पिशाच हृदयी बनवीर तलवार को चमकाता हुआ वहाँ आगया। महल में बालक उदयसिह को खोजने लगा। धाय पन्ना ने उस रक्त पिपासु को अपने पुत्र की ओर संकेत कर दिया। उसने उदयसिंह समझ कर उसे तलवार के घाट उतार दिया। धाय पन्ना

ने अपने स्वामी के हितार्थ अपने बालक का बलिदान कर दिया। किन्तु उफ! तक नहीं किया। धाय पन्ना उसी समय उदयसिंह के पास जा पहुँची।

उदयसिंह को साथ लेकर धाय पन्ना ने वीरवाघजी के पुत्र सिहराव के पास जाकर रखने के लिए प्रार्थना की। किन्तु बनवीर के भय से उसने अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए कहा—बनवीर वंशसहित मेरा विनाश कर देगा। मेरे में इतना कहाँ सामर्थ्य है कि मैं उसका सामना कर सकूं। वहाँ से पन्ना डूंगरपुर के रावल यशकर्ण के पास गई और राजकुमार को रखने की प्रार्थना की, पर उसने भी नहीं रखा।

अपने विश्वासी भीलो से रक्षित पन्ना अरावली के दुर्गम पहाडो को लाँघती हुई ईडर के कूटमार्गों को लाँघकर कुंभलमेरु दुर्ग मे पहुँची। वहाँ पर आशाशाह देपुरा नामक एक जैन श्रावक किलेदार था। धाय पन्ना ने उसकी गोद - उदयसिंह को रखा और कहा—बनवीर से रक्षा करना अव आपका कर्तव्य है। पर आशाशाह ने गोद से उसे उठाना चाहा। आशा की वीर माता वहीं पर खड़ी थी। पुत्र की यह कायरता देखकर उसने फटकारते हुए कहा-आशा! तू वस्तुतः मेरा पुत्र नहीं है, मैंने तुझे पाल-

पोस कर इसलिए बड़ा किया था ? तेरे इस जीवन को धिक्कार है। अच्छा तो यही था तू मेरे उदर से जन्म न लेता। जो मनुष्य संकट की घड़ियो मे किसी के काम नहीं आता, जो शक्ति होते हुए भी किसी को बचा नहीं सकता। शरणार्थियो को आश्रय नहीं दे सकता है, ऐसे निकृष्ट जीवो को संसार में जीने का अधिकार नहीं है। जरा इधर आ! जिन हाथो से सहला सहलाकर तुझे इतना बड़ा किया है उन्ही हाथो से तेरे जीवन को समाप्त कर दूं। क्योकि जैन कभी कायर नहीं होते।

इतना कहकर वह आशाशाह की ओर आगे बढी। आशाशाह वीर माता के चरणों में गिर पडा। उसकी कायरता अब नष्ट हो गई थी। वह सच्चा मातृभक्त था। उसने कहा—मैं आपका पुत्र होकर कभी कायरता पूर्ण व्यवहार कर सकता हूँ ? क्या शेरनी का पुत्र शृगाल से डर सकता था। अपने तुच्छ प्राणो के मोह में शरणागत की रक्षा से विमुख हो सकता था। मेरी वीर माता! वस्तुतः तुम्हे भ्रम हो गया था!

अपने प्यारे पुत्र के वीरोचित ये शब्द सुनकर माता की बाँछे खिल उठी। वह अपने पुत्र के सिर पर स्नेह से हाथ फेरने लगी।

आशाशाह ने धीरे से पूछा—माता ! यकायक तुम्हारे मे यह परिवर्तन कैसे आगया ? अभी तो मुझे मारना चाहती थी अभी प्रेम से मेरा सिर सहला रही हो।

माता ने उत्तर मे कहा—जैन माताओ का यही अद्भुत स्वभाव है। कर्तव्य विमुख चाहे पति हो, चाहे पुत्र, वह उसका मुह देखना नही चाहती।

आशाशाह ने उदयसिह को अपना भतीजा कहकर जाहिर किया। युवा होने पर आशाशाह ने अन्य वीर सामन्तो की सहायता से चित्तौड का सिहासन हिला दिया। मेवाड के बडे-बडे सामन्त और राज्य अधिकारी उदयसिह की रक्षा न कर सके किन्तु एक जैन श्राविका ने जो कार्य किया उसे इतिहास कभी भुला नही सकता। उस महिला रत्न का कार्य आदर्श है।

२५ || दार्शनिक की सम्पत्ति

दो हजार वर्ष पुरानी घटना है। यूनान के एक नगर पर शत्रु राजा ने आक्रमण किया। नागरिकों ने वीरता के साथ अपनी रक्षा का प्रयत्न किया किन्तु शत्रु सेना इतनी अधिक थी कि नागरिक उसके सामने टिक नहीं सके, उन्होंने शत्रु सेना के सामने घुटने टेक दिये।

आक्रमणकारियों ने नगर निवासियों को कहा—अपना सामान लेकर चौबीस घण्टे की अवधि में जहाँ भी जाना चाहे जा सकते हैं। उन्हें किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं दिया जायेगा।

प्रत्येक नागरिक अपनी पीठ पर सामान लादकर कठिनता से चल रहा था। भार की अधिकता से कमर झुकी जा रही थीं। पांव लडखड़ा रहे थे, कंठ सूखे जा रहे थे। उनकी दशा बडी दयनीय थी।

उस विराट् भीड़ में एक व्यक्ति ऐसा भी था, जिसके

हाथ खाली थे और उसकी पीठ पर कुछ भी लदा हुआ न था। उसका नाम था महान् दार्शनिक 'वायस'।

एक ने अपने स्नेही मित्र मे कहा—देखिए! यह कितना गरीब है, इसके पास कुछ भी सामान नहीं है।

दार्शनिक उनकी बात सुनकर मन ही मन हंसने लगा।

लोगो ने पूछा—क्या बात है? आप क्यों हँस रहे हैं?

दार्शनिक ने कहा—आप लोग तो अपने पास थोड़ी-थोड़ी सम्पत्ति लेकर जा रहे हैं किन्तु मैं तो अपने साथ सारी सम्पत्ति लेकर जा रहा हूँ।

लोगो को आश्चर्य हुआ। वह कैसे!

दार्शनिक ने कहा—चिन्तन की चांदनी में जो विचार उद्बुद्ध होते है वही मेरी अनमोल सम्पत्ति है, उसे कोई भी शक्ति लूट नही सकती। और न इस संपत्ति का बोझ ही लगता है।

२६ || हजरत उमर खलीफा

हजरत उमर जो द्वितीय खलीफा के नाम ने प्रसिद्ध थे, उन्होने अपने बाहुबल ले अरब, फिलस्तीन, रूम, बेतुल मुकद्दस प्रभृति स्थानो में केवल दस वर्ष की स्वल्प अवधि मे ही छत्तीस हजार किले और शहर विजय किये थे। यह विजयी खलीफा सादगी की साक्षात् प्रतिमूर्ति थी। वह परिवार पालन के लिए केवल बीस रुपए महीने के लेते थे। बीस रुपए से उनका गुजारा भी बड़ी मुश्किल से चलता था। वे जो कपड़े फट जाते उन पर चमडे का पेवन्द लगाते थे जिससे उस स्थान पर से कपडा पुनः न फटे। पहनने के लिए जूते भी स्वय बनाते। अपने सिर के नीचे तकिये के स्थान पर ईंट लगाते थे। उनके बच्चों के वस्त्र भी फटे रहते थे। एक दिन उनके पुत्र अब्दुल-रहमान ने नये कपड़े बनाने के लिए रोकर हठ किया और खलीफा से प्रार्थना की। खलीफा का हृदय पसीज गया

और उन्होने अगले वेतन मे से दो रुपये देने के लिए कोषाध्यक्ष को लिखा। कोषाध्यक्ष खलीफा का ही पक्का शिष्य था। उसने रुपया देने से मनाई करदी। और खलीफा उमर को लिखा—जीवन का कोई भरोसा नही है, यदि आप स्वर्गस्थ हो गये तो ये रुपए किस खाते मे डाले जायेगे, आपका जीवन युद्धमय जीवन है, मैं नही चाहता कि आप कर्जदार होकर मरे।"

जब हजरत उमर ने वह पत्र पढा, तो उसकी आँखो में आँसू आगए। उसने कोषाध्यक्ष की दूरदर्शिता देखकर प्रसन्नता व्यक्त की। पुत्र के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—पुत्र ! तुम्हारे कपडे अगले महिने मे बना दूँगा। इन्ही खलीफा ने अपने प्यारे पुत्र को एक अनाथ लड़की से बलात्कार करने पर बेंत लगाये, जिससे वह मर गया।

खलीफा इतने बड़े राज्य का स्वामी था, दिन रात युद्ध में व्यस्त रहता था तथापि अपनी कमर पर मशक बाँधकर असहाय विधवाओ के घर प्रतिदिन पानी भरता था।

२७ || अहंकार नष्ट हो गया

एक समय राजा भोज का दरबार लगा हुआ था। सभी सभासद् बैठे हुए थे। मंत्री राजा के सामने-उन्होने आज दिन तक जो दान दिया था, वह विवरण पत्रिका पढकर सुना रहा था, वह ज्यो-ज्यो पृष्ठ उलट रहा था, त्यो-त्यो राजा उसे सुनकर झूम रहा था। राजा ने सभासदो से कहा—आप देखिए, मैंने कितना दान दिया है। आज दिन तक किसी ने नहीं दिया वह मैंने दिया है। ऐसा कौनसा शुभ कार्य रहा जो मैंने न किया हो। मेरे मन में अब यह संताप नही रहा कि मैंने यह कार्य नही किया।

राजा के पुनः पुन. इस प्रकार कहने से महामन्त्री को विचार आया कि अभिमान से कही राजा का तेज नष्ट न हो जाए। राजा के अभिमान को नष्ट करने के लिए दूसरे दिन मन्त्री ने भण्डार मे से राजा विक्रमादित्य की

पुरानी दान की विवरण पत्रिका निकाली। और राजा भोज के सामने रखी। उसमें लिखा था कि "राजा विक्रमादित्य ने प्रस्तुत काव्य को सुनकर उन्होने कवि को पारितोषिक रूप मे निम्न सम्पत्ति दी—आठ करोड सोने की मुद्रा, ६३ तुला मोती, भवरो से परेशान हुए ऐसे मदमत्त पचास हाथी, दस हजार चपल घोड़े और सौ नर्तकियाँ। यह सामग्री दक्षिण के पाण्ड्य राजा ने श्री विक्रमादित्य को दण्ड के रूपमें अर्पित की थी और राजा ने वह सारी सम्पत्ति ज्यो की त्यो काव्य पढने वाले कवि को दान में दे दी।"

राजा भोज अनेक बार मुँह मे अँगुली दबाये इस विवरण को पढ रहा था उसकी आँखे फटी-फटी सी रह गई। अहंकार वर्फ की तरह गल गया। राजा विक्रम के दान के सामने उसका दान कुछ भी नहीं था।

जब दानी, ज्ञानी, ध्यानी और धनवान अपने सामने अपने से बढकर व्यक्ति का चिन्तन करता है तो उसका अहकार नष्ट हो जाता है।

—प्रबन्ध चिन्तामणि १ पृ. ३५

२८ || दानवीर : महाकवि माघ

महाकवि माघ का नाम किस इतिहासवेत्ता को ज्ञात नहीं होगा। उनका जन्म राजस्थान के श्रीपाल नगर में हुआ था, जो वर्तमान में भिन्नमाल के नाम से पहचाना जाता है। उनके पिता उस युग के बहुत बड़े धनी थे। पिता ने एक अच्छे ज्योतिषी से उनकी जन्मपत्री बनवाई। ज्योतिषी ने भविष्य कथन करते हुए कहा—जीवन के पूर्वार्द्ध में सम्पत्ति दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ती रहेगी, पर जीवन की सान्ध्यवेला में सारा धन नष्ट हो जायगा।

पुत्र का भावी जीवन अत्यन्त सुख के क्षणों मे सम्पन्न हो इसलिए पिता ने एक अनमोल रत्नहार बनवाया, जिसमें छत्तीस हजार कीमती रत्न लगवाये। पिता ने विचार किया यदि पुत्र उडाऊ प्रकृति का हुआ, और उसकी उम्र सौ वर्ष की हुई तो प्रतिदिन के हिसाब से

एक-एक रत्न पर्याप्त होगा। माघ की शिक्षा के लिए पिता ने खूब धन खर्च किया। माघ संस्कृत भाषा का उद्भट विद्वान् हो गया। पिता अपार सम्पत्ति को छोड़ कर एक दिन परलोकवासी हो गए।

माघ उदार प्रकृति का व्यक्ति था। वह घर पर आये हुये याचको को उन्मुक्त हाथों से दान देता था। विद्वानो का वह उचित सम्मान करता था। वैभव और विलास के अम्बार में भी माघ कविता निर्माण करता रहा। उसने उस समय 'शिशुपालवध' जैसे महाकाव्य का निर्माण किया।

भाग्य ने पलटा खाया, वैभव क्षीण होने लगा। याचको को खुले हाथ से दान देने वाला स्वयं याचक बनकर अपनी धर्मपत्नी के साथ मालव देश की राजधानी सरस्वती स्वरूपा धारा नगरी पहुँचा। एक भी पैसा उसके पास नहीं था। 'शिशुपाल वध' महाकाव्य ही उसकी एक मात्र सम्पत्ति थी। उसने अपनी पत्नी से कहा—"राजा भोज सरस्वती का उपासक है उसके यहाँ पर काव्य ग्रन्थ गिरवी रख कर कुछ धन लेआओ जिससे अपना कुछ कार्य चल सके।"

श्रियक ने अपनी फड़कती हुई भुजा पर दृष्टि डाली और कहा–पिताजी मैं तैयार हूँ आपका आदेश प्राप्त होने पर राजभक्ति के लिए मैं अपने प्राण भी न्यौछावर कर सकता हूं।

शकडाल–पुत्र ! तुम्हारे अनमोल प्राणो की अभी आवश्यकता नही है। अभी तो केवल मेरे ही प्राणो की आवश्यकता है। उसने अपनी तलवार श्रियक के हाथो में थमाते हुए कहा—कल प्रात.काल जब मै राजा को नमस्कार करने जाऊँ, उस समय तलवार के एक ही प्रहार मे मेरे प्राणो की बलि देकर राजभक्ति का परिचय प्रदान करना।

श्रियक का कलेजा काप उठा। पिताजी ! यह कैसी राज भक्ति। मिथ्या बहम के लिए आपके प्राण और वह भी मेरे हाथो से। यह निकृष्ट कार्य मैं कभी नही कर सकता।

शकडाल–पुत्र ! मैं तुम्हारे हृदय की बात समझता हूँ। तुम यदि यह कार्य नही करोगे तो राजद्रोह का आरोप लगाकर राजा पूरे परिवार को कोल्हू मे डालकर पिलवा देगा। क्या यह कुलक्षय तुम्हे स्वीकार है ?

श्रियक के मुह से शब्द नही निकल रहे थे। उसके

हृदय मे तूफान मचा हुआ था। यह कैसी राजभक्ति ? जहाँ मानव के जीवन का कुछ भी मूल्य नही। यह राज-नीति है या यमराज नीति है, पिता पुत्र के हाथ मे तलवार देकर अपनी हत्या करने के लिए कह रहा है। मैं कभी भी इस प्रकार का कार्य नही कर सकता।

शकडाल—पुत्र ! तुम अभी राजनीति के गंभीर दाव-पेच नही समझ सकते। तुम इस समय अधिक नही तो इतना ही समझ लो कि तुम्हें पितृवंश की प्रतिष्ठा के लिए और कुल की रक्षा के लिए यह कार्य करना है।

श्रियक—पितृहत्या का महान् पाप मेरे से नही हो सकता।

शकडाल ने श्रियक को अपनी छाती से चिपकाते हुए कहा—पुत्र ! तू पितृहत्या के पाप मे डर रहा है, पर वह नही होगा। मैं राज सभा मे पहुचने के पूर्व तालपुट विष मुह मे रख लूगा. मेरी मृत्यु उससे अवश्य ही हो जायेगी। तुझे तो केवल निमित्त मात्र बनना है और वह निमित्त तुम्हारी राजभक्ति का प्रमाण होगा और तुम्हारे वंश की प्रतिष्ठा का आधार होगा। तुम्हारी कुलपरम्परा का पुनीत प्रतीक होगा। तुम मुझे वचन दो कि तुम मेरे वचन

का दृढता के साथ पालन करोगे। तुम ही बताओ कि क्या पिता की आज्ञा की अवहेलना करना पितृहत्या के समान नही है ?

आँखो से आसू बहाते हुए श्रियक ने स्वीकृति सूचक सिर हिलाया।

महामात्य शकडाल ने मन से सभी से क्षमा याचना की, वीतराग भगवन्त को नमन कर प्रसन्न मन से राज-सभा मे पहुंचे।

प्रतिदिन की तरह श्रियक राजा के अंगरक्षक के स्थान पर नियुक्त था। महामन्त्री को देखते ही राजा की भोहे तन गईं। महामन्त्री ने ज्यो ही नमन करने के लिए सिर झुकाया कि लपलपाती तलवार उनके सिर पर आकर गिर पड़ी। एक ही बार में मस्तक से धड़ अलग गिर पडा। खून की नदी बह गई। चारो ओर हाहाकार मच गया। पुत्र के हाथ से पिता की हत्या ! लोग दिग्मूढ बने देखते ही रह गये।

राजा ने घूर कर श्रियक की ओर देखकर कहा—अरे ! तैंने यह क्या अन्याय कर डाला, किसने कहा था यह कार्य करने के लिए ?

राजन् ! मुझे ऐसा पिता नही चाहिए जो राजद्रोह

करता हो। मैं राजा का भक्त हू, जो राजा का शत्रु वह मेरा शत्रु है, चाहे वह पिता हो या भाई हो उसकी अतिम दशा यही होती है। श्रियक का ओजस्वी और तेजस्वी स्वर सभा मे एक कौने से दूसरे कौने तक गूंज रहा था, किन्तु अन्तर्मानस मे भयकर हाहाकार मच रहा था। मन मे राजा के प्रति घृणा थी, पर ऊपर से स्वामि-भक्ति के मधुर स्वर फूट रहे थे।

राजा ने साश्चर्य श्रियक की ओर देखकर कहा—श्रियक! क्या सचमुच शकडाल राज विद्रोह की तैयारी कर रहे थे?

श्रियक ने धीरे से कहा—राजन्! सत्य वह नहीं होता जो वस्तुत. होता है। सत्य तो वह होता है जो राजा समझते हैं। यद्यपि शकडाल राजभक्त थे पर उन्हे आपने राजद्रोही समझ लिया था।

राजा—श्रियक! क्या बता रहे हो? क्या तुम्हारे घर पर राज्य विप्लव की तैयारियां नही हो रही थी! क्या यह मिथ्या है।

श्रियक—राज्य विप्लव की नही, किन्तु मेरे विवाह की तैयारियाँ हो रही है। परन्तु कुछ दुष्ट व्यक्तियो ने आपके कान गलत भर दिये। बिना महामन्त्री की बलि दिये,

आपके मन का भ्रम मिटाया नहीं जा सकता था। आप समझाने पर भी समझ नहीं सकते थे इसलिए मुझे आपके चरणों में उनकी बलि चढानी पड़ी!

राजा—श्रियक! धोखे में महामन्त्री चले गये!

राजा ने श्रियक को चूम लिया। और उसे मंत्री पद पर नियुक्त किया।

सभी के मुह पर शकडाल की राजभक्ति, प्रजा प्रेम, कुशल राजनीतिज्ञता और सच्ची धार्मिक भावना की चर्चा चल रही थी।

—उत्तराध्ययन, लक्ष्मीवल्लभी टीका अ. २

२० || राजा कुमारपाल की दयालुता

अर्धरात्रि का समय था, पाटण निवासी निद्रा देवी की गोद मे आनन्द से सोये हुए थे। महाराजा कुमारपाल राजप्रासाद में आनन्द से सो रहे थे किन्तु राजकीय समस्याओ में उलझने के कारण नीद नही आ रही थी। उसी समय राजा के कर्ण कुहरो मे एक नारी के करुण-क्रन्दन की आवाज आई। राजा सोचने लगा--इस नीरव रात्रि मे करुण-क्रन्दन करने वाला कौन दीन दुःखी होगा?

कुमारपाल अपने विस्तर से उठा, साधारण वस्त्र धारण किए और हाथ मे तलवार लेकर रुदन के अनुसन्धान मे एकाकी चल पडा। वह ज्यो-ज्यो आगे वढता गया, त्यो-त्यो हृदयवेधी चीत्कारें राजा के कोमल कलेजे को वीधने लगी। राजा चलता हुआ शहर के बाहर पहुंचा। एक वृक्ष के नीचे बढिया वस्त्राभूषण से

सुसज्जित एक महिला दारुण विलाप कर रही है। उसके सुन्दर केश विखरे हुए हैं। माँग का सिन्दूर अभी पूर्ण रूप से पोंछा नही गया है। वह सिर पीट कर पुन' पुन रो रही है।

कुमारपाल उस बहिन के पास आया और बोला—इस निर्जन वन में और घनी रात में तुम क्यो रो रही हो और क्यो दारुण चीत्कारें कर रही हो ?

कुमारपाल के मधुर और शिष्ट व्यवहार से महिला का मन आश्वस्त हुआ। उसने कहा—मेरा पति मेरे से बहुत ही प्यार करता था। उसने विराट् वैभव मुझे समर्पित किया। मेरे एक पुत्र हुआ, उसकी प्रसन्नता मे चारो ओर उत्सव मनाया गया। पुत्र बीस वर्ष का हुआ, एकाएक उसने सदा के लिए आँख मुँद ली। हमारी आशा का सुनहरा महल ढह गया। कहते-कहते बहिन का गला रुँध गया और वह सुबक-सुबक कर रोने लगी।

राजा ने उसे धैर्य बँधाया। बहिन ने पुन आगे कहना प्रारम्भ किया—पुत्र की मृत्यु के भयङ्कर आघात से उसके पिता भी मुझे छोडकर चले गये। हाय ! हाय ! अब मेरा संसार उजड़ गया। अब इस संसार में मेरा कोई नही है।

राजा उसकी दुःख भरी कहानी को सुनकर रोमांचित हो गया।

रमणी ने अपनी बात प्रारम्भ रखते हुए कहा—मेरी यह अपार सम्पत्ति राज्य के अधिकारी आकर ले जायेंगे। अब मैं अपना गुजारा किस प्रकार करूँगी। मैं भिखारिण बनकर घर-घर में जाकर किस प्रकार भीख मागूगी। मैं उस घोर दुःख को न सह सकने के कारण ही यहाँ फाँसी लगा कर मरना चाहती हूँ। पर तुम्हारे आने से मर नही सकी।

राजा ने कहा—पुत्री! मै तुम्हे आश्वासन दिलाता हूँ कि तुम्हारा यह धन कोई भी राजा का अधिकारी नही ले जा सकेगा, यदि कोई अधिकारी कुछ भी ननुनच करे तो तुम कुमारपाल राजा से कहना, वह दीन दुःखियो का आश्रयदाता है। तुम यहाँ से अपने घर जाओ और आनन्द से अपना जीवन यापन करो।

वह महिला शान्त और प्रसन्न होकर अपने घर की ओर चल दी। कुमारपाल भी अपने महलो में लौट आया। वह चिन्तन करने लगा, अतीत काल से ही अपुत्र की सम्पत्ति का अधिकारी राजा माना गया है। पर कुमारपाल तो आंसुओं से सना हुआ यह धन नही

चाहिए! उसकी आँखो के सामने एक भद्र महिला का भयानक रूप दिखलाई दे रहा था, उसे रात भर नींद नहीं आई।

प्रात काल हुआ, राजसभा में आते ही राजा ने यह आदेश जाहिर किया कि आज से चौलुक्य कुमारपाल का आदेश है कि निष्पुत्र मरे हुए व्यक्ति की सम्पत्ति राज्य-कोष मे नही लाई जाए।

अधिकारियों ने नम्र निवेदन करते हुए कहा—राजन्! आपश्री के इस आदेश से राज्य-कोष को प्रतिवर्ष कितने ही करोड़ो का घाटा होगा। इसलिए इसपर पुनर्विचार किया जाय।

राजा कुमारपाल ने दृढता के साथ कहा—चाहे कितना भी घाटा हो इसकी चिन्ता मुझे नही है किन्तु दीन दु:खियो के आंसुओ से सना हुआ धन मैं अपने राज-कोष में लेना पसन्द नहीं करता।

राजा के मन मे करुणा और स्नेह की दिव्य ज्योति जगमगा रही थी।

२१ || संकल्प की दृढ़ता

जिज्ञासा ज्ञान की कुञ्जी है, जब जिज्ञासा बलवती होती है तब अवस्था, व्यस्तता और अस्वस्थता कोई भी वस्तु उसके अध्ययन में बाधक नही बनती।

गुर्जरनरेश कुमारपाल के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि उनकी पचास वर्ष की अवस्था हुई तब तक वे सस्कृत भाषा से अनभिज्ञ थे। क्योकि उनकी युवावस्था का मुख्य भाग सिद्धराज से अपने को बचाने के लिए, भटकने और कष्ट सहने में ही व्यतीत हुआ था, वे बुद्धिमान अवश्य थे, पर विद्या प्राप्ति का अवसर नही मिला था। किन्तु इकावन वर्ष के पूर्ण होने पर उन्होने व्याकरण और काव्य पर प्रभुत्व प्राप्त कर लिया था।

प्रसग इस प्रकार बना, कुमारपाल की राजसभा में भारत के दिग्गज विद्वान् बैठे हुए थे। एक विद्वान् कुमार-

पाल को कामन्दकीय नीति शास्त्र सुना रहा था। उसमें एक श्लोक आया—

पर्जन्य इव भूतानामाधार पृथिवीपति

—राजा मेघ के समान समस्त प्राणियो का आधार होता है।

विद्वान् के मुंह से कुमारपाल ने यह अर्थ सुना तो प्रसन्न होकर कहा—'अहो राजा को मेघ की ऊपम्या।' 'ऊपम्या' जैसे अशुद्ध और ग्रामीण शब्द के प्रयोग पर भी किसी भी सभासद् ने विरोध न कर हार्दिक प्रसन्नता अभिव्यक्त की, किन्तु महामन्त्री कपर्दी का सिर लज्जा से झुक गया, उसके चेहरे पर खिन्नता की रेखाएं उभर आयी।

सभा विसर्जित होने पर कुमारपाल ने एकान्त में उससे पूछा कि मेरी बात सुनकर आपका मुख-कमल कैसे मुरझा गया?

मत्री ने गभीरतापूर्वक कहा—राजन्! नीति का कथन है कि राजा होना अच्छा है, नही होना भी अच्छा है, किन्तु मूर्ख राजा होना तो बिल्कुल ही अच्छा नही है। मुझे हार्दिक खेद है कि जिस राजा के अशुद्ध और ग्रामीण शब्द प्रयोग पर भी सभासद प्रसन्नता अभिव्यक्त करे, उस

है। उन्होने बिना कुछ कहे दृष्टि फेरली।

मुञ्जाल ने एक दिन ओर समय देखकर पुन. उसी प्रश्न को दोहराया किन्तु तेजपाल ने उस दिन भी उसकी बात टालदी। जब तीसरी बार वह बात कही गई तो मन्त्री की भौहे तन गई उन्होने कहा—मूर्ख कही का, बोलने का विवेक भी नही है।

मुञ्जाल—स्वामी! अपराध क्षमा करे, पर दोनो मे एक तो अवश्य मूर्ख होगा न!

मन्त्री ने साश्चर्य उधर देखा—तुम्हारा क्या तात्पर्य है? लगता है कि तुम्हारी बात में कुछ रहस्य रहा हुआ है।

मुञ्जाल ने नम्रता पूर्वक कहा—स्वामी, आप जो इस समय भोजन कर रहे है अर्थात् इस विराट् ऐश्वर्य और आनन्द का उपभोग कर रहे है वह वस्तुत पूर्व जन्म के पुण्य का ही फल है, इसलिए वह ताजा भोजन नही, वासी भोजन है, ताजा भोजन तो कुछ ओर ही होता है।

ताजा भोजन क्या है, वह किस प्रकार का होता है? मन्त्री ने जिज्ञासा प्रस्तुत की।

मुञ्जाल ने कहा—स्वामी ! यदि आप यह जानना चाहते है तो भट्टारक श्री विजय सेन सूरि के पास चलिए, वे आपको इसका पूर्णरूप से स्पष्टीकरण करेगे ।

महामन्त्री तेजपाल ने उसी समय मुञ्जाल श्रावक के साथ श्री विजयसेन सूरि के पास जाकर ताजा और वासी भोजन का मर्म पूछा !

आचार्य ने कहा—जो यहाँ पर तुम ऐश्वर्य का उपभोग कर रहे हो, वह सारा पूर्व भव में किये गये पुण्य का ही फल है । जव तक इस जीवन मे दान, सेवा, परोपकार आदि के कार्य नही करते तब तक वासी भोजन है । ताजा भोजन नही ।" मन्त्री ने आचार्य से धर्म का सही स्वरूप समझा । उनका जीवन एकदम परिवर्तित हो गया । जिसका उल्लेख इतिहास में किया गया है ।

महामंत्री तेजपाल ने अनेक स्थानो पर दान शालाएँ खुलवाई । पौषधशालाएँ निर्माण करवाई । वापिकाएँ और तडाग बनवाये । आवू के पहाडो मे कलापूर्ण जिनालय बनाये । दीन, अनाथ, वृद्ध, बीमार आदि व्यक्तियो के लिए यत्र-तत्र सेवा निकेतन खोले । उनका जीवन इस प्रकार परिवर्तित हो गया ।

—प्रबन्ध चिन्तामणी ४ । १८६

राज्य में विद्या का प्रचार-प्रसार किस प्रकार हो सकेगा ? वाग् देवता सरस्वती की उपासना क्या इसी प्रकार होती है ? आप जैसे महान् सम्राट् के मुंह से 'ऊपम्या' जैसे अशुद्ध शब्द को सुनकर मुझे अपार दुःख हुआ है।

महामन्त्री की बात सुनते ही कुमारपाल को अपनी अज्ञानता पर घृणा हुई। उसने उसी समय दृढ प्रतिज्ञा की कि वह संस्कृत भाषा का गम्भीर अध्ययन करेगा। दूसरे दिन मे मातृका-पाठ से सम्राट् ने अध्ययन प्रारम्भ किया, तीव्र लगन के कारण एक वर्ष के स्वल्प समय मे ही व्याकरण और काव्य पर अधिकार कर लिया। हेम-चन्द्राचार्य के द्वारा बनाये गये योगशास्त्र, वीतराग स्तोत्र का वह प्रतिदिन स्वाध्याय करता था। त्रिपष्टिशला का पुरुष चरित्र भी उसी की प्रेरणा मे आचार्य हेमचन्द्र ने बनाया था।

जब सकल्प मे दृढता होती है तब सूखी चट्टानो से भी निर्झर फूट पड़ते है।

२२ || ताजा भोजन

महामन्त्री तेजपाल नीतिशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे। धार्मिक साहित्य का भी उन्होने गहराई से अध्ययन किया था, पर जीवन मे धर्म रमा नही था। ज्ञान और आचरण मे एकरूपता न होने से जीवन अपूर्ण प्रतीत हो रहा था।

मुञ्जाल श्रावक जो महामन्त्री का निजी गुमास्ता था उसने सोचा कि मेरा कर्तव्य है कि मैं महामन्त्री को सही प्रेरणा दूं। एक दिन समय देखकर महामन्त्री से पूछा—स्वामी! आप ताजा भोजन करते है या ठंडा भोजन करते हैं।

गुमास्ते की यह बात सुनते ही तेजपाल की आँखो में क्रोध की रेखाए चमक उठी। उन्होने तीखी नजर से उधर देखा, पर यह सोचकर कि यह गाँव का रहने वाला गँवार है इसलिए बोलने की सभ्यता अभी तक नही आई

२३ || महामन्त्री उदयन

मरुधर प्रान्त का एक गरीब वैश्य आजीविका की तलाश करता हुआ गुजरात की प्रसिद्ध नगरी कर्णावती मे पहुचा। चलने से बहुत थक गया था। जैन उपाश्रय के बाहर चबूतरे पर वह विश्रान्ति के लिए बैठा था। उसका चेहरा उदास और बहुत चिंतित था। उपाश्रय मे से प्रवचन सुनकर एक श्राविका बाहर निकली, उसने कहा—भाई, तुम कौन हो? कहाँ के रहने वाले हो? तुम्हारा क्या नाम है?

युवक ने कहा—बहिन! मेरा नाम 'ऊदा' है, मैं मारवाड का रहने वाला जैन हूं। यहाँ पर मेरा कोई पहिचान वाला नही है, इसलिए कहाँ जाऊँ, यह सोचकर यहाँ बैठा हूँ।

श्राविका का नाम लक्ष्मी बहिन था, पर सभी उसे स्नेह से 'लाछी' कहकर पुकारते थे। लाछी ने हार्दिक

माघ की धर्मपत्नी उस काव्य ग्रन्थ को लेकर राजा भोज की सभा में पहुची। उसकी आँखो से अश्रु छलक रहे थे, उसके हाथ थर-थर काँप रहे थे, वह नही चाहती थी कि काव्य ग्रन्थ को गिरवी रखा जाय, किन्तु वह विवश थी। भाग्य की विडम्बना के कारण उसने वह काव्य ग्रन्थ राजा भोज को गिरवी रखने को दे दिया।

राजा भोज ने ग्रन्थ को बडे प्रेम से उठाया। उसमे विशिष्ट प्रसग की स्मृति के लिए एक स्थान पर चिन्ह लगा रखा था। राजा ने ज्यो ही वह पृष्ठ खोला, उसमें निम्न श्लोक लिखा था—

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखनण्डं,—
त्यजतिमुदमूलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्त—
हत विधि लसितानां 'ही' विचित्रोविपाकः॥

अर्थात् कुमुदवन की शोभा समाप्त हो चली, कमल-वन खिल रहा है। उलूक उदास हो रहे है, चक्रवाक प्रसन्नता से झूम रहे है, सूर्य आकाश मे चढा आ रहा है, चन्द्रमा निस्तेज हुआ अस्ताचल मे अपना मुह छिपा रहा है। एक का उत्थान है दूसरे का पतन है, हा! भाग्य का किस प्रकार का यह विचित्र खेल है?"

प्रभात से सम्बन्धित उपरोक्त वर्णन को पढकर राजा भोज गद्-गद् हो गया। श्लोक मे आये हुए 'ही' के प्रयोग पर राजा इतना अधिक प्रसन्न हुआ कि उसने एक लाख का पारितोषिक देकर उसका सन्मान किया।

माघ की पत्नी एक लाख स्वर्ण मुद्रा लेकर चली तो याचको की अपार भीड़ उसके साथ हो गई। वे मागने लगे। माघ की पत्नी ने वह लाख स्वर्ण मुद्राओ का पुरस्कार याचको को वाट दिया। जव वह अपने स्थान पर पहुँची तो उस समय खाली हाथ थी। माघ के पूछने पर उसने सारी वात वता दी। माघ वहुत ही प्रसन्न हुआ, उसने कहा—वस्तुत. 'तुम मेरी शरीरधारिणी कीर्ति हो।'

वात चल ही रही थी कि एक भिखारी जो माघ की पत्नी के पीछे-पीछे चल रहा था, जिसे कुछ भी नही मिला था, वह माघ के सामने आकर खडा हो गया। महाकवि ने इधर-उधर दृष्टि डाली, पर कही पर भी कुछ देने की वस्तु नही मिली तो उनकी आखो से आसू वहने लगे।

उस भिखारी ने महाकवि को रोते हुए देखा तो वह निराश होकर लौटने लगा। अपने द्वार से निराश अतिथि को लौटते हुए देखकर कवि का हृदय व्यथित हो गया।

उसकी वाणी से वेदना के स्वर फूट पड़े—अय प्राणो ! याचक द्वार से निराश होकर लौट रहा है। इससे तो यही श्रेष्ठ है कि तुम भी उसी के साथ चले जाओ। तुम्हारे को एक दिन अवश्य जाना है तो फिर अभी ही क्यो नहीं चले जाते। ऐसा साथी फिर कहां प्राप्त होगा। अनुश्रुति है–'फिर ऐसा साथी कहा मिलेगा', इस वाक्य के साथ ही, महाकवि के प्राण शरीर से अलग हो गए। महाकवि संसार से विदा हो गया, पर उसकी धवल कीर्तिकौमुदी आज भी चमक रही है।

—प्रवन्ध चिन्तामणि २।५६, पृ. ४४

२६ || अभिमान न कर !

मालव के अधिपति मुञ्ज ने गोदावरी के उस पार दक्षिण के राज्यो पर विजय पताका फहराने के लिए विशाल सेना तैयार की। महामत्री रुद्रादित्य ने कहा—राजन् ! आपका उधर जाना इस समय उपयुक्त नही है, उन राजाओ को जीतना टेढी खीर है। पर उसके प्रतिवाद की ओर राजा ने कुछ भी ध्यान नही दिया। राजा को अपनी विराट् सेना और शक्ति पर गर्व था। उसने ज्यो ही दक्षिण की भूमि पर अपना पडाव डाला त्यो ही दक्षिण के राजा तैलिप ने मुञ्ज पर अचानक धावा बोल दिया। मुञ्ज संभल न सका, उसकी सेना तितर-बितर हो गई। मुञ्ज को उसी समय बन्दी बना लिया गया और उसे काठ के पिंजडे में डाल दिया।

राजा तैलिप की एक विधवा बहन थी, जिसका नाम मृणालवती था। राजा तैलिप ने उसको मुञ्ज की देख

रेख मे नियुक्त किया। शनै शनै. मुञ्ज के साथ उसका प्रणय सम्बन्ध हो गया।

मुञ्ज युवा था और मृणालवती युवावस्था को पार कर चुकी थी, उसके चेहरे पर झुर्रिया पड चुकी थी, इसलिए उसे अपने आप पर लज्जा भी आती थी और वह कभी-कभी उदास भी हो जाती थी। उसके मोह में फंसा मुंज कहता—मृणालवती! तुम्हारा यौवन तो शक्कर की डली के समान है, जिसके चाहे कितने भी टुकडे हो जाये तो भी वह मीठी ही लगती है। मुञ्ज की इस प्रकार मोहयुक्त वाणी सुनकर मृणालवती बाग-बाग हो उठती।

मुञ्ज के बुद्धिमान मन्त्रियो ने राजा को उस बन्दीगृह से मुक्त करने के लिए एक गुप्त योजना बनाई। मुञ्ज ने वह योजना मृणालवती को बतादी और साथ चलने का अत्यधिक आग्रह किया। मृणालवती ने सोचा--राजा के रनवास में एक से एक बढकर सुन्दर रानियां है, राजा उनके सामने मुझे कहा पूछने वाला है, मुझे वहा पर छोड़ देगा, इसलिए मैं राजा को यहा से जाने नही दूगी। उसने अपने भाई तैलिप को मुञ्ज के भाग जाने की सारी योजना विस्तार से बता दी।

जब तैलिप ने मुञ्ज की प्रस्तुत योजना सुनी तो उसे बहुत ही क्रोध आया। मुञ्ज को अपनी करनी का फल चखाने के लिए उसे रस्सियो से बाधा और बन्दर की तरह शहर के प्रत्येक घर में भिक्षा मागने के लिए घुमाया जाने लगा। मुज पराधीन था, इसलिए करता भी क्या।

एक दिन मुञ्ज को एक किसान के यहा पर भिक्षा के लिए ले जाया गया। मुञ्ज उसके द्वार पर भीख मागने के लिए खडा था। मुञ्ज ने भिक्षा देने के लिए पुकारा, किन्तु वह किसान की स्त्री आनन्द से अपने पाड़े को छाछ पिला रही थी। प्यार से उसको पुचकार रहा थी। अनेक बार पुकारने पर भी उसने मुज की पुकार को सुनी अनसुनी करदी और अपने कन्धे को गर्व से ऊंचा कर फटकारते हुए कहा—"देखता नही है, मैं अपने पाडे को पहले सम्भालू, या तुझे दू।"

एक किसान की स्त्री के द्वारा इस प्रकार झिड़कियां खाने पर मुञ्ज से रहा नही गया, उसने कहा—अय भोली! कुटुम्बिनी अपने इस पाडे को देखकर इतना घमण्ड मत करो। राजा मुज के पास पर्वत की चोटी के समान ऊचे चौदह सौ छिहत्तर मदोन्मत्त हाथी थे, वे भी नही रहे, फिर तू इस पाडे पर क्यो गर्व कर रही है।

उस किसान महिला ने आँखे फाड कर दरवाजे पर खड़े उस भिखारी को एडी से चोटी तक देखा—क्या राजा मुज की यह दशा है ?

मन की अपार वेदना आसू बनकर बरसने लगी। मुज आँख उठाकर उस महिला को पुन: देख नही सका, वह अपना सिर झुकाकर शीघ्र ही वहा से चल दिया।

—प्रबन्धचिन्तामणी पृ० १६
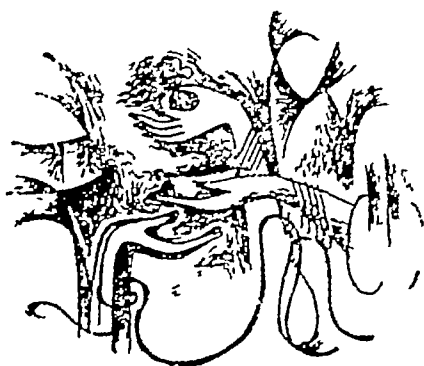
३० || वचन का वाण

बादशाह मुहम्मद गजनवी और उसका वजीर दोनों एक दिन किसी जगल में से होकर जा रहे थे। उन्होने देखा, एक वृक्ष पर एक उल्लू दूसरे उल्लू की ओर मुंहकर बैठा है और आपस में वार्तालाप कर रहे है।

वजीर की मजाक करने की दृष्टि से बादशाह ने कहा—वजीर ! सुना है कि तुम उल्लुओ की भाषा समझते हो ! बादशाह का तात्पर्य यह था कि उल्लू की बात उल्लू ही समझा करते है इसलिए तुम स्वय उल्लू हो।

वजीर को बादशाह के हार्दिक भाव को समझने मे देर न लगी। वह बुद्धिमान और हाजिर जवाबी था। उसने कहा—जहांपनाह ! आपकी कृपा से मैं समझ लेता हूं पर इनकी बातो पर ध्यान नही दिया जाय, यही हमारे लिए अच्छा है।

वजीर के कहने के ढंग से बादशाह को विश्वास हो

गया कि वस्तुतः वजीर पशुओ की बोली जानता है।

बादशाह ने वार्तालाप का साराश बताने के लिए अत्यधिक आग्रह किया तो वजीर ने कहा—यदि आप मुझे जीवन दान दे तो मैं सही-सही बात बता सकता हू ।

जीवनदान देने पर वजीर ने कहा—इसमे मे एक उल्लू लडकी वाला है और दूसरा उल्लू लडके वाला है। लड़की वाले ने अपनी लडकी की शादी उसके लडके से करने के लिए कहा और उसके दहेज मे पांच सौ उजाड गाँव देने को कहा।

उत्तर में लडकी वाले ने कहा—आप क्या चिन्ता करते हैं, आजकल मुहम्मद गजनवी का राज्य है, अब उजाड गांवो की क्या कमी है, आप सम्बन्ध स्वीकार कीजिए। पॉच सौ गॉव ही क्या, मैं हजार उजाड गाँव दे दूंगा।

वजीर कहने को तो कह गया, पर बादशाह के भय से वह कांपने लगा।

बादशाह वजीर के तीखे व्यग्य को समझ गया। उसने वजीर को धैर्य बधाते हुए कहा—मैं तुम्हारी बात समझ गया हूं, तुम भयभीत न बनो। अब से उल्लुओ की इच्छा की पूर्ति नही हो सकेगी। हमने अपने जीवन के अन-

मोल क्षरण गाँव व शहरो को उजाड़ने में लगाए थे अब हम गाँव और शहरो को आबाद करने में लगाएंगे। काश। यदि यह बात मुझे पूर्व मालूम हो जाती तो कितना अच्छा होता।

३१ || प्रशंसा

जब तुम्हारी कोई आलोचना और निन्दा करता है तब तुम उसकी बात को ध्यानपूर्वक सुनो और अपनी भूल का परिमार्जन करो। जो अपनी निन्दा सुनने से कतराता है, वह अपनी भूलो का परिष्कार नही कर सकता।

जब तुम्हारी कोई प्रशंसा करता है तब प्रशंसा सुन कर फुग्गे की तरह फूलो नही, किन्तु उस समय सोचो कि कही प्रशंसा के द्वारा मुझे फंसा तो नही रहा है न !

अमेरिका के प्रसिद्ध लेखक बेंजामिन फ्रेकलिन ने अपनी आत्मकथा मे एक स्थान पर लिखा है—वह बाल्य-काल मे फिलाडेल्फिया के स्कूल मे पढ़ने जाया करता था। उसने एक दिन रास्ते में एक लुहार को कार्य करते हुए देखा। उत्सुकतापूर्वक कुछ समय तक वह टकटकी

३२ || मानवता पूर्ण व्यवहार

प्रस्तुत प्रसंग ईस्वी सन् १७२८ का है। गोदावरी के किनारे पर मराठो और निजाम के सैनिको के मध्य घमासान युद्ध चालू था। मराठा सैनिको ने निजाम की विशाल सेना को चारो ओर से घेर लिया। कही से भी उनको सहायता नहीं आ सकती थी।

निजाम की सेना के पास खाद्य सामग्री समाप्त हो गई। सैनिक क्षुधा से छटपटाने लगे। उन्ही दिनो मुसलमानो का एक उत्सव भी आ गया। निजाम का नबाव सब प्रकार से विवश हो गया। अन्त मे उन्होने मराठो के सेनापति बाजीराव के पास दूत भेजकर प्रार्थना की कि यदि इस समय हमारे सैनिको को भोजन आदि प्राप्त नही हुआ तो हम भूख से छटपटाते हुए वेमौत मर जाएंगे। आप कृपाकर हमारे लिए भोजन का प्रबन्ध करे।

युद्ध नीति के अनुसार बाजीराव को यह सुनहरा अव-

सर हाथ लगा था । भूखे और अशक्त सैनिकों को एक ही आक्रमण मे परास्त किया जा सकता था और उन पर विजय वैजयन्ती फहराई जा सकती थी, परन्तु उन्होने सोचा—यह मानवता का घोर अपमान है। दुश्मन भी चाहे क्यो न हो, पर उसने मेरे पर विश्वास किया है और अन्न की याचना की है, तो भूखे को भोजन देना मेरा कर्तव्य है। उन्होने उसी समय दया से द्रवित होकर पाँच हजार बैलो पर खाने-पीने का सामान लदवाकर निजाम की सेना मे भिजवा दिया।

बाजीराव का यह शत्रु के प्रति किया गया व्यवहार उनके साथियो का पसन्द नही आया, परन्तु बाजीराव ने उनके विरोध की ओर ध्यान नही दिया।

बाजीराव की सहृदयता और मानवता पूर्ण सद्व्यवहार को देखकर निजाम बादशाह पानी-पानी हो गया। श्रद्धा से उसका सिर झुक गया। उन्होने कहा—बाजीराव! मानव नही, किन्तु महामानव है।

जिस विराट् शत्रु सेना को आज तक जीत नही सके थे उसी शत्रु सेना को मानवतापूर्ण सद्व्यवहार से कुछ ही क्षणो मे जीत लिया।

लगाकर उसे देखता रहा। स्कूल जाना भी विस्मृत हो गया।

लुहार अपने शस्त्रो को तेज कर रहा था, उसका दूसरा साथी कार्यवश कही बाहर गया हुआ था। उसने देखा, बालक बैंजामिन तल्लीनता के साथ उसके काम को देख रहा है। उसने अपनी वाणी मे स्नेह-सुधा घोलते हुए कहा—तुम तो बडे सुन्दर व समझदार लड़के हो, दूर खडे रह कर क्यो देख रहे हो, जरा पास में आकर अच्छी तरह देखो।

बैंजामिन उसके प्रेम भरे निमत्रण को सुनकर मुस्कराने लगा, और आगे बढा।

लुहार ने फिर धीरे से कहा—तुम वस्तुतः बहादुर हो, तुम्हारे जैसे प्रतिभा सम्पन्न लडको से ही देश को गौरव है। बताओ क्या तुम थोड़ा सा चाक घुमाकर मेरी सहायता कर सकते हो।

बैंजामिन ने अपना बस्ता एक तरफ रखा और लुहार का चाक घुमाने लगा। लुहार उसकी प्रशसा करता रहा और वह चाक घुमाता रहा।

निरन्तर दो घन्टे तक चाक घुमाने से बालक के दोनो पुट्ठे थक कर चूर-चूर हो गये। घडी ने बारह बजाये,

लुहार ने अपना काम बन्द किया। बेंजामिन अपना बस्ता लेकर स्कूल पहुचा, पर विलम्ब से पहुंचने के कारण अध्यापक ने बेंतो से उसकी पूजा की। उसके सारे शरीर में अपार वेदना होने लगी। उसकी भुजाए सूज गईं और घर जाकर एक सप्ताह तक विस्तर पर पड़ा रहा।

बडे होने पर जब कभी भी कोई उसकी प्रशंसा करता तब उसे स्मरण आता कि प्रशंसा कर कही यह अपने औजार तो तेज नही करना चाहता है। कही मुझे यह अपने चंगुल मे तो नही फसा रहा है।

प्रशंसा ऐसा चिकना फर्स है जिस पर सभल कर चलना बडा कठिन है।

३२ || सियाजीराव

प्रस्तुत प्रसग बडोदरा के महाराजा सियाजी राव के समय का है।

प्रातःकाल का समय था, एक वहिन जंगल मे से कण्डे एकत्रित कर रही थी। उसने कण्डो से एक वडा सारा टोपला भर दिया पर इतना अधिक वजन हो गया कि वह अपने हाथ से उठाकर सिर पर नही रख सकती थी। वह किसी राहगीर की प्रतीक्षा कर रही थी, उसे उसी समय घोडे की पदध्वनि सुनाई दी। वहिन रास्ता छोड़कर एक ओर खड़ी हो गई। उसी समय दो घुड-सवार सुन्दर वस्त्राभूपणो से सज्जित होकर उधर निकल आये।

वहिन ने आवाज दी, क्या भाई! इस टोपले को उठाने मे मेरी मदद कर सकोगे।

प्रथम घोडे सवार ने उत्तर दिया—अवश्य वहिन,

इतना कहते-कहते वह घोड़े से नीचे उतर गया। उसका अनुसरण दूसरे सवार ने भी किया ।

प्रथम घोड़े सवार ने शीघ्र ही टोपले के हाथ लगाया और वह टोपला उस वहिन के सिर पर रख दिया। दूसरा साथी यह देखकर मुस्कराने लगा।

वहिन के हृतंत्री के सुकुमार तार झनझना उठी! भठे—तुम्हारा भला हो।

दोनों घोड़े सवार आगे वढे, प्रथम घोडे सवार का नाम सियाजी राव था और दूसरे उनके निजी सेक्रेटरी अरविन्द घोप थे।

सियाजीराव ने पूछा—अरविन्द ! तुम उस समय क्यो मुस्करा रहे थे।

अरविन्द ने नम्रतापूर्वक निवेदन किया, आप महाराजा है, दूसरो के सिर के वोझ को उतारना आपका कार्य है, पर आपने तो उस गरीव बहिन के सिर पर भार रखा, यह देखकर मुझे हसी आ गई।

सियाजीराव विद्वान् और चतुर थे। अरविन्द का कथन वे समझ गये, उन्होने अपना घोडा पीछे फेरा और उस वहिन के पास जाकर उसका पता लिख लिया।

दूसरे ही दिन उस बहिन को सूचना प्राप्त हुई कि

वह लक्ष्मी विलास महल में उपस्थित होवे। वहिन पहुंची। सिंहासन पर सियाजी राव बैठे हुए थे, देखकर तत्काल समझ गई कि यह तो वही घोडे सवार है जिसने कल मेरे कण्डे का टोपला उठाया था। वह भय के मारे थर् थर् कांपने लगी।

महाराजा ने चादी की थाली में रुपए, व वस्त्र प्रदान करते हुए कहा--वहिन! तुमने मुझे कल भाई कहा था न! भाई की यह छोटी सी भेट स्वीकार करो।

भाई ने वहिन के जीवन को सुखी वना दिया। अरविन्द ने कहा--अब टोपला उतारना कहा जायेगा।

लेखक की महत्वपूर्ण कृतियाँ

१ ऋषभदेव एक परिशीलन (शोध प्रवन्ध) मूल्य ३)

२ धर्म और दर्शन (निवन्ध) मूल्य ४)

३ भगवान् पार्श्व एक समीक्षात्मक अध्ययन (शोध प्रवन्ध) मूल्य ५)

४ साहित्य और संस्कृति (निवन्ध) मूल्य १०)

५ चिन्तन की चादनी.(उद्‌वोधक चिन्तन सूत्र) मूल्य ३)

६ अनुभूति के आलोक मे (मौलिक चिन्तन सूत्र) मूल्य ४)

७ विचार रश्मियां (विचार प्रधान सूत्र) मूल्य ७)

८ संस्कृति के अचल मे (निवन्ध) मूल्य १)५०

९ कल्प सूत्र मूल्य २५)

१० फूल और पराग (कहानियां) मूल्य १)५०

११ खिलती कलियाँ : मुस्कराते फूल(लघु रूपक) मूल्य ३)५०

१२ भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण : एक अनुशीलन मूल्य १०)

१३ वोलते चित्र (शिक्षाप्रद ऐतिहासिक कहानियाँ) मूल्य १)५०

१४ वुद्धि के चमत्कार (कहानियां) मूल्य १)५०

१५ प्रतिध्वनि (विचारोत्तेजक रूपक) मूल्य ३)५०

शीघ्र प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ

१ चिन्तन के क्षण

२ महावीर जीवन दर्शन

३ महावीर साधना दर्शन

४ महावीर तत्व दर्शन

५ सास्कृतिक सौन्दर्य

६ आगम मथन

७ अन्तगडदशा सूत्र

८ अनेकान्तवाद · एक मीमासा

९ संस्कृति रा सुर

१० अणविध्या मोती

११ जैन लोक कथाएँ :

१२ ज्ञाता सूत्र · एक परिचय

१३ महासती सोहन कुँवरजी व्यक्तित्व और कृतित्व

मुनि श्री के सभी प्रकाशन इस पते पर प्राप्त हो सकेंगे ।

श्री लक्ष्मी पुस्तक भण्डार

गाधी मार्ग, अहमदाबाद-१